मार्च / अप्रैल 2026

रूहानी रिश्ता

साइंस ऑफ़ द सोल रिसर्च सेंटर

विषय सूची

4 ख़ुदी और ख़ुदा
5 क्या तुम ख़ुद को भाग्यशाली समझते हो?
8 बसंत का वायदा
13 बेपरवाह मुर्शिद
15 ऑस्कर पुरस्कार
18 सेवा – प्रेरणा और नज़रिया
23 यहूदी उपदेशक की सीख
26 कथनी से करनी भली
31 संक्षेप में सत्य
33 कर्म के जाल से आज़ादी
37 चिंता करना छोड़ दें
41 एक नई जागरूकता
43 विचार करने योग्य
44 दुनियावी प्यार से रूहानी प्यार का सफ़र
49 स्थिरता की मिठास
53 अंतिम शब्द

रूहानी रिश्ता

Science of the Soul Research Centre
Guru Ravi Dass Marg, Pusa Road, New Delhi-110005, India

Copyright © 2026 Science of the Soul Research Centre®

बिना स्रोत के कुछ लेख और कविताएँ इस पत्रिका के लेखकों द्वारा लिखी गई हैं ।

भाग 22 • अंक 2 • मार्च अप्रैल 2026

ख़ुदी और ख़ुदा

जब तक हम अपने सीमित वुजूद से ऊपर नहीं उठते तब तक ख़ुदा की पहचान मुमकिन नहीं है। ख़ुदी और ख़ुदा दोनों एक साथ नहीं रह सकते। इस सच को सतगुरु की दया-मेहर के बिना जाना नहीं जा सकता।

जब सौभाग्य से हमारा मिलाप पूर्ण सतगुरु से हो जाता है, वह हमें इस इंद्रिय और सीमित वुजूद से ऊपर उठने की युक्ति सिखा देते हैं। जब हौंमैं का नाश हो जाता है तब शंका और डर भी समाप्त हो जाते हैं और साथ ही जन्म-मरण का दु:ख भी समाप्त हो जाता है।

परम ज्ञान सतगुरु द्वारा ही प्राप्त होता है क्योंकि उनमें हमें परमात्मा का साक्षात्कार करवाने और उसके पास ले जाने का सामर्थ्य होता है।

गुरु नानक देव जी इस छोटे से शब्द की समाप्ति यह समझाते हुए करते हैं कि वह स्वयं परमात्मा में समा गए हैं और दोनों एक हो गए हैं।

हउ मै करी तां तू नाही तू होवह हउ नाहे॥
बूझहो गिआनी बूझणा एह अकथ कथा मन माहे॥
बिन गुर तत न पाईऐ अलख वसै सभ माहे॥
सतगुर मिलै त जाणीऐ जां सबद वसै मन माहे॥
आप गइआ भ्रम भउ गइआ जनम मरन दुख जाहे॥
गुरमत अलख लखाईऐ ऊतम मत तराहे॥
नानक सोहं हंसा जप जापहो त्रिभवण तिसै समाहे॥

गुरु नानक का रूहानी उपदेश

क्या तुम ख़ुद को भाग्यशाली समझते हो?

महाराज चरन सिंह जी प्रकाश की खोज पुस्तक में एक विदेशी शिष्य को पत्र में लिखते हैं:

> *परमात्मा ने दयापूर्वक हमें इस रूहानी मार्ग के लिये चुना है, इस बात की हमें ख़ुशी होनी चाहिये। यदि हम ख़ुश नहीं हैं, तो इसका कारण यही है कि नामदान के महान प्रसाद और सौभाग्य का हमें अनुमान नहीं है। कृपया क्षण भर के लिये शांतिपूर्वक विचार करें। क्या आप अपने देश के उन सौभाग्यशाली व्यक्तियों में से नहीं हैं जिन्हें परमात्मा ने इस मार्ग के लिये चुना है? ...क्या आप समझते हैं कि आपने अपने ही प्रयत्नों से इस मार्ग की खोज और प्राप्ति की है? तो फिर आप सतगुरु के पास अब आने के बजाय इसके पहले क्यों नहीं आए?*

महाराज जी का अहम प्रश्न हमें यह सोचने के लिए प्रेरित करता है कि हम कितने ज़्यादा भाग्यशाली हैं। कोई नहीं जानता कि हमारी आत्मा, नामदान की बख़्शिश होने से पहले कितने जन्म भटकती रही है या जो दात हमें बिना किसी ख़ास कोशिश के मिल गई है कितने ही जीव उसके लिए तड़प रहे हैं? निस्संदेह हम धरती के सबसे भाग्यशाली जीवों में से हैं। ख़ुद को ख़ुशनसीब समझने की इस भावना से हमारे अंदर शुक्राने का भाव और ख़ुशी पैदा होनी चाहिए। फिर भी हममें से बहुत कम लोग यह दावा कर सकते हैं कि वे इसी नज़रिए से जीवन जीते हैं। ज़्यादातर समय हम चिंता, उदासी, ग़फ़लत या ऐसी ही किसी अन्य भावना से जूझते रहते हैं जिसे बौद्ध धर्म मुख्य रूप से दु:ख ही मानता है।

हम ख़ुद को ख़ुशक़िस्मत इसलिए नहीं मानते क्योंकि अपने हालात को देखने का हमारा नज़रिया सही नहीं है। अगर हम संत-महात्माओं के उपदेश पर विचार करें और हमें इस बात का एहसास हो जाए कि एक पूर्ण सतगुरु का शिष्य बनने में क़िस्मत ने कितनी अहम भूमिका निभाई है तो हमारा

नज़रिया पूरी तरह से बदल जाएगा। इस सृष्टि में अनगिनत युग बिताने के बाद, परमपिता परमात्मा ने हमारी आत्मा की सँभाल की ज़िम्मेदारी पूर्ण सतगुरु को सौंपी है ताकि वह हमें निज-घर वापस ले जा सकें। तीन कारणों की वजह से मनुष्य-जन्म एक बहुमूल्य दात है।

धर्म-ग्रंथों में बताया गया है कि मनुष्य-जन्म, मुक्ति की इच्छा और पूर्ण सतगुरु का मार्गदर्शन – यह तीनों आत्मा की उन्नति के लिए बहुत अहम पड़ाव हैं जोकि परमात्मा की दया-मेहर के बिना मुमकिन नहीं। दूसरे शब्दों में, यह एक अत्यंत दुर्लभ संयोग है। उदाहरण के लिए, हो सकता है कि कोई मनुष्य के रूप में जन्म ले मगर अलौकिक सत्य की मौजूदगी को मानने के लिए ही तैयार न हो या कोई मुक्ति प्राप्त करना चाहता हो मगर किसी रूहानी मार्गदर्शक से उसका मिलाप ही न हो। ऐसी दया-मेहर का प्राप्त होना अपने आप में अद्‌भुत है लेकिन इससे भी ज़्यादा ख़ास बात यह है कि हमने ऐसा कुछ भी नहीं किया जिसके कारण हम इस दात को पाने के क़ाबिल बने हों। महाराज चरन सिंह जी पुस्तक *संत-संवाद*, भाग2 में फ़रमाते हैं:

> *हमें ज़रूरत है तो बस उसकी दया-मेहर की। जब उसकी बख़्शिश होती है, तो ऐसे हालात बन जाते हैं कि हम इस रचना से बाहर निकल जाना चाहते हैं। हम संतमार्ग पर आ जाते हैं, हमें भजन-सिमरन करने का मौक़ा मिल जाता है। हमें वे सहूलियतें, वह माहौल मिल जाता है। हमारे अंदर उसका प्यार, उसकी भक्ति पैदा हो जाती है और हम दुनिया से मुँह मोड़कर उसकी ओर रुख़ कर लेते हैं। ये सब चीज़ें सिर्फ़ उसकी दया-मेहर से ही आती हैं। ऐसा नहीं है कि हमने इन चीज़ों का हक़दार बनने के लिये कुछ किया है। हमने कुछ भी नहीं किया। ...हम उसका प्यार पाने के हक़दार बनने के लिये कभी कुछ नहीं कर सकते। वही देता है और हमेशा देता ही रहता है। हम तो इतने तुच्छ हैं कि उससे दया-मेहर की याचना भी नहीं कर सकते, क्योंकि इस रचना में हम इनसान होने के नाते बिलकुल लाचार हैं। यह सब उसकी दया-मेहर ही है।*

तीसरा कारण कि पूर्ण सतगुरु का शिष्य बनना असाधारण दात क्यों है – और जो हमारे लिए इस वक़्त सबसे ज़्यादा उपयुक्त है – वह यह है कि इससे हमारी आत्मा को जन्म-मरण के चक्र से मुक्त होने का मौक़ा मिलता है। लेकिन हमें इसी बात से संतुष्ट नहीं हो जाना है। नामदान का मिलना मुक्ति प्राप्त करने के सफ़र की सिर्फ़ शुरुआत है। सतगुरु के मार्गदर्शन में सफलता तो यक़ीनी है लेकिन हमारी कोशिशों की वजह से हमारी रूहानी तरक़्क़ी जल्दी या देर से हो सकती है।

इसलिए आओ सतगुरु जो कुछ भी करने के लिए कहते हैं, उसे पूरा करने में उनका साथ दें। बहाने बनाना व्यर्थ है। यह कहना कि हम भजन-सिमरन नहीं कर सकते, ख़ुद को धोखा देना है। यदि हमारे मन में सतगुरु के लिए प्रेम और भरोसा है तो यक़ीनन हम उनकी ख़ुशी प्राप्त करना चाहेंगे। चूँकि सारी सृष्टि के रचयिता परमात्मा ने अनगिनत आत्माओं में से हमें नामदान के लिए चुना है, हमें दोबारा ख़ुद से यह पूछना चाहिए, "क्या मैं ख़ुद को भाग्यशाली समझता हूँ?"

बसंत का वायदा

फागुन के दिन चार रे, होरी खेल मना रे॥
बिन करताल पखाबज बाजै, अनहद की झनकार रे।
बिनि सुर राग छतीसूँ गावै, रोम रोम रणकार रे॥
सील सँतोख की केसर घोली, प्रेम प्रीत पिचकार रे।
उड़त गुलाल लाल भयो अंबर, बरसत रंग अपार रे॥
घट के पट सब खोल दिये हैं, लोक लाज सब डार रे।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चरण कँवल बलिहार रे॥

मीरा: प्रेम दीवानी

सदियों से संत-महात्माओं ने बसंत ऋतु को रूहानी आनंद से जोड़ा है। रूमी और हाफ़िज़ जैसे सूफ़ी क़ामिल दरवेशों के क़लाम में बाग़ के फूलों का वर्णन मिलता है जो आवाज़ देकर एक-दूसरे को पुकारते हैं। ख़ुशी के इस इज़हार से संकेत मिलता है कि जब मन और आत्मा आंतरिक आनंद का अनुभव करते हैं तो कैसा महसूस होता होगा। ऊपर दी गई बानी में, मीराबाई हिंदुस्तान में मनाए जानेवाले होली के त्योहार के साथ इस आंतरिक आनंद की तुलना करती हैं, जब परिवार और सगे-संबंधी हर्षोल्लास से एक-दूसरे पर रंग डालकर इस उत्सव को मनाते हैं।

बसंत ऋतु रूहानी तौर पर जागृत होने का सुन्दर उदाहरण है क्योंकि यह ख़ुशनुमा बदलाव का – शीतकाल के अंधेरे से नए जीवन में प्रवेश का समय है। सूर्य की खिली हुई धूप में उछल-कूद कर रहे नन्हें जानवरों, पेड़ों पर खिलती हुईं कोमल कलियों और धरती से बाहर निकलने की कोशिश करती हरी-हरी कोंपलों की कल्पना करें।

हम जानते हैं कि जन्म से संबंधित ये पीड़ाएँ जीवन की संपूर्ण यात्रा का एक ज़रूरी हिस्सा हैं जो हमें ये याद दिलाती हैं कि विकास और नवीनीकरण के लिए अकसर चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। हालाँकि, सर्दी के उन अंधकारपूर्ण दिनों के साथ स्वाभाविक रूप से नई शुरुआत का उत्साह

आता है, जब जीवन फिर से पनपना शुरू होता है। 20वीं सदी के कवि टी.एस.इलियट ने अपनी कविता 'द वेस्टलैंड' में लिखा है, "अप्रैल का महीना सबसे निर्दयी है जो बंजर भूमि से सिरिंगा के फूल पैदा करता है।"

अप्रैल के महीने को निर्दयी क्यों कहा गया है? शायद इसलिए क्योंकि इसमें हर तरह के कायाकल्प और बदलाव की पीड़ा छिपी है। मौसम के बदलाव की शुरुआत सर्दी की समाप्ति पर होती है। पौधों से पत्ते झड़ जाते हैं, उनकी जीवनदायी शक्ति कम हो जाती है और वे सिकुड़कर ज़मीन पर गिर जाते हैं। यह प्रक्रिया अपने आप में पीड़ादायक है। इसी तरह, जब हम रूहानी जीवन-शैली को अपनाने का प्रण लेते हैं तो हमें आख़िरकार मनमर्ज़ी का जीवन त्यागना ही पड़ता है। इस संदर्भ में, महाराज चरन सिंह जी पुस्तक *जीवत मरिए भवजल तरिए* में फ़रमाते हैं:

इस राह पर चलना आसान नहीं है। अपनी मंज़िल पर पहुँचने के लिए हमें अपने जीवन में बहुत कुछ छोड़ना पड़ता है। आपको अपने मन से हमेशा सावधान रहना पड़ता है, मानों आप तलवार की धार पर चल रहे हों।...संतमत पर चलने के लिए पूरी तरह बदलने की ज़रूरत होती है, इसलिए यह आसान नहीं है।

सबसे पहला बदलाव यह आता है कि इंद्रियों के अधीन रहनेवाला अहंकारी व्यक्ति सांसारिक लगाव को त्याग देता है। संत-महात्मा समझाते हैं कि हमें 'दिल का हुजरा साफ़ करना' है यानी हमें अपने हृदय को ख़ाली करना है ताकि सतगुरु के प्रेम के लिए जगह बन सके जो हमें परमात्मा का अनुभव करवाते हैं। हृदय की यह सफ़ाई एक पीड़ादायक प्रक्रिया है जिस तरह सर्दी का मौसम। रूहानी प्रेम का जागृत होना भी उतना ही पीड़ादायक है जितना बसंत ऋतु के आने से पहले की हलचल। इस बात को जान लेना कि हम अपनी पुरानी नीरस ज़िंदगी से कुछ बेहतर पाना चाहते हैं – यानी कि हमने कुछ बेहतर देखा और महसूस किया है पर अभी कुछ समय के लिए उसे फिर से खो दिया है – प्रेम की यह कसक भी कष्टदायक है। महाराज चरन सिंह जी, पुस्तक *जीवत मरिए भवजल तरिए* के उसी प्रसंग

में फ़रमाते हैं: "और फिर प्रभु की प्रीति और भक्ति प्राप्त करना, उसके मिलाप के लिए तड़पना, कोई सुखदायी बात नहीं है।"

आप जिज्ञासुओं को समझाते हैं कि इस सबके दौरान, "हमें साहस के साथ संघर्ष करते रहना चाहिए।" इसका मतलब है कि हमें साहस से अपनी इंद्रियों के दमन और बेहतर भविष्य के मार्ग में आनेवाली चुनौतियों को स्वीकार करना चाहिए। जिस सुख और पूर्णता की प्राप्ति की तलाश में हम निकले हैं वह तभी पूरी होगी जब हम अपने मन पर क़ाबू पा लेंगे और इसके लिए हमें अपने मन को भजन-सिमरन में लगाने के लिए संघर्ष करना पड़ेगा। पूर्ण सतगुरु का मिलाप और उनसे नामदान प्राप्त होना हमारे जीवन के बेहद अहम मोड़ हैं। सतगुरु हमें एक ऐसी सरल युक्ति बताते हैं जिसे आठ साल का बच्चा या अस्सी साल का बुज़ुर्ग भी अपना सकता है और साथ ही वह हमें प्रेरणा देते हुए हमारा मार्गदर्शन भी करते हैं। महाराज चरन सिंह जी फ़रमाते हैं, "हमें मन को एकाग्र करने की आदत डाल लेनी चाहिए... धीरे-धीरे हम इसमें सफल होंगे।" जब भजन-सिमरन में आनंद महसूस होने लगे तो यह हमारी सफलता की शुरुआत है। उस समय ऐसा लगता है मानो बसंत ऋतु आने ही वाली है।

सिमरन

महाराज चरन सिंह जी जिस एकाग्रता की बात करते हैं वह सिमरन के ज़रिए आती है। यह दो तरह से होता है: नामदान के समय, हमने हर रोज़ ढाई घंटे भजन-सिमरन करने का वायदा किया था इसलिए अनुशासन में रहकर जीवन जीने का मतलब है कि भजन-सिमरन नियमित रूप से हमारी दिनचर्या का हिस्सा होगा। दूसरा, भजन-बंदगी की प्रक्रिया सिमरन पर आधारित है। पहले दो घंटों में हम पाँच पवित्र नामों (सिमरन) को दोहराते हुए अपने इधर-उधर भटकते विचारों को शांत करने और अपने मन को तीसरे तिल पर एकाग्र करने की कोशिश करते हैं। अंधेरे में देखते हुए, हम सतगुरु के स्वरूप का ध्यान करने की कोशिश करते हैं। सतगुरु इसे प्रेम

और श्रद्धा के साथ करने की नसीहत देते हैं। सिमरन इंजन के समान है, मगर प्रेम और श्रद्धा-भाव से किया गया अभ्यास ईंधन है। यह ईंधन दुर्लभ है – भजन-बंदगी करना नीरस और निष्फल लग सकता है और मन पहले ही बाग़ी है। इसलिए दिन में सिमरन करना – जब हम अपनी दिनचर्या में व्यस्त होते हैं – मन को क़ाबू में करने की कुंजी है; इससे धीरे-धीरे एकाग्रता बढ़ने लगती है। फिर हमें भजन-सिमरन में आनंद आने लगता है।

सिमरन – जिसमें हम अपने मन को तीसरे तिल पर एकाग्र करते हैं – के बाद हम शब्द-धुन (भजन) को सुनने की कोशिश करते हैं। मीराबाई कहती हैं, "बिन करताल पखाबज बाजै, अनहद की झनकार रे।" आप 'शब्द' – एक ऐसी जीवनदायी धारा जो धुन के रूप में सुनाई देती है और प्रकाश के रूप में दिखाई देती है – को सुनने का वर्णन इस ढंग से करती हैं। 'शब्द' के साथ जुड़ने का प्रभाव इतना गहरा होता है कि जो साधक इसकी अद्‌भुत सुरीली धुनों को सुनते हुए इसमें लीन हो जाते हैं वे ख़ुद-ब-ख़ुद तानाशाह मन और उसकी नकारात्मक प्रवृत्तियों से मुक्त हो जाते हैं जिससे उनमें सभी सद्‌गुण सहज ही प्रकट होने लगते हैं। मीराबाई फ़रमाती हैं कि ये गुण उसके प्यार की तरंगों पर इस तरह उभर कर आते हैं जिस तरह होली के त्योहार पर हवा में उड़ते हुए रंग।

सील सँतोख की केसर घोली, प्रेम प्रीत पिचकार रे।

महाराज चरन सिंह जी अपने शिष्यों को रूहानी तरक़्क़ी द्वारा आनेवाले ज़बरदस्त बदलाव का यक़ीन दिलाते हुए फ़रमाते हैं कि सच्चे दिल से मेहनत करनेवाले शिष्य में निश्चित रूप से ये गुण "दूध के ऊपर मलाई की तरह" आ जाएँगे। नम्रता, संतोष जैसे गुणों को धारण करने के लिए संघर्ष कर रहे सत्संगियों के सवालों के जवाब में महाराज जी ने उन्हें यह दिलासा दिया। हुज़ूर महाराज जी ने यह संदेश दिया कि हालाँकि हमें अपनी तरफ़ से मन को क़ाबू में करने के लिए पूरा प्रयास करना चाहिए पर मन वास्तव में तभी वश में आता है जब यह शब्द की दिव्य शक्ति से जुड़

जाता है। असल में, तीसरे तिल पर शब्द-धुन के प्रकट होने से पहले ही, अगर हम नामदान के समय दी गई हिदायतों के अनुसार पूरी ईमानदारी से भजन-सिमरन करते हैं तो महाराज चरन सिंह जी हमें यह याद दिलाते हैं:

> *आपको चाहे अंतर में अनुभव न हों पर आप भजन का प्रभाव अवश्य महसूस करेंगे। आप अपने अंदर आनंद, ख़ुशी और संतोष का अनुभव करेंगे और आपका जीवन के प्रति पूरा दृष्टिकोण ही बदल जायेगा।*

ये शब्द हम सब निर्बल जीवों के लिए प्रेरणादायक हैं जो अभी तक इस दुनिया के कीचड़ में धँसे हुए हैं और हर रोज़ ढाई घंटे भजन-बंदगी करने के लिए संघर्ष कर रहे हैं। यदि हम शिद्दत और लगन से भजन-सिमरन को पूरा समय दें तो आख़िरकार हम आकाश को रोशन होते हुए देखेंगे और बसंत ऋतु की हवा के झोंके महसूस करने लगेंगे।

बेपरवाह मुर्शिद

अपने मुर्शिद की महानता पर ध्यान देना मुरीदों के लिए शायद आम बात है। मुर्शिद की ख़ूबसूरती, उनकी ताक़त और विनम्रता के लाजवाब मेल से मुरीद आकर्षित हो जाते हैं और अपनी अयोग्यता के बावजूद भी अपने लिए मुर्शिद की उदारता को देखकर प्रभावित हो जाते हैं इसलिए मुर्शिद की भक्ति करना उनके लिए बहुत आसान होता है। परंतु रूमी कहते हैं, "कामिल मुर्शिद, मुरीद के द्वारा बनाए गए अपने बुत को तोड़ देते हैं।" यानी मुर्शिद, मुरीद के ध्यान को उस सत्य की ओर मोड़ते हैं जो उसे अपने अंदर प्राप्त होगा। जैसा नक्शबंदी संप्रदाय के संस्थापक बहाउद्दीन नक्शबंद कहते हैं, "हम मंज़िल तक पहुँचने का ज़रिया हैं। यह ज़रूरी है कि खोजी अपने आप को हम से अलग कर ले और सिर्फ़ अपनी मंज़िल पर ध्यान दे।"

ख़ास वक़्त आने पर मुरीद का ध्यान मुर्शिद पर से हटाना ज़रूरी होता है और उसे अपने अंदर की असलीयत पर ध्यान देने के लिए मजबूर करना पड़ता है। इस कार्य को करने के लिए कभी-कभी मुर्शिद ऐसा बर्ताव करते हैं जो अजीब और सख़्त लग सकता है। एक धनवान नौजवान अबू-सईद अबील-ख़ैर का मुरीद बन गया। उसने अपनी सारी जायदाद ग़रीबों में बाँट दी और तन-मन से रूहानियत की राह पर चलने के लिए तैयार हो गया। तीन वर्ष तक उसने बिना कोई शिकायत किए, हर तरह का छोटे-से-छोटा काम करते हुए मुरीदों के संप्रदाय की सेवा की।

इसके बाद अबू-सईद ने अपने मुरीदों को उस नौजवान को नज़रअंदाज़ करने और उसके साथ सख़्ती से पेश आने के लिए कहा। मुरीदों ने ऐसा ही किया। इस वक़्त के दौरान मुर्शिद ख़ुद उस नौजवान के साथ बहुत प्यार से पेश आए और नौजवान सब्र के साथ अपना दु:ख झेलता रहा। इसके बाद अबू-सईद ने भी उसे नज़रअंदाज़ करना शुरू कर दिया। वह उसके साथ रूखा बर्ताव करते थे और ऐसा लगता था कि वह उसकी तरफ़ कभी देखते ही नहीं थे। हालाँकि मुर्शिद के लंगर में सभी को मुफ़्त भोजन मिलता था, लेकिन अबू-सईद ने हुक्म

दिया कि उस नौजवान को खाना न दिया जाए। तीन दिन तक नौजवान को रोटी का एक निवाला भी नसीब नहीं हुआ।

चौथी रात को बहुत-से लोग इकट्ठे हुए, जिनको कई तरह का ज़ायकेदार खाना परोसा गया, लेकिन फिर भी उस नौजवान की तरफ़ किसी ने ध्यान नहीं दिया। वह खाने के एक निवाले के बिना ही सारी रात दरवाज़े पर खड़ा रहा। आख़िर में अबू-सईद ने चारों तरफ़ निगाह घुमाई और उसकी तरफ़ ऐसे देखा मानो उसे पहली बार देख रहे हों। उन्होंने उसे डाँटते हुए कहा कि वह उससे बहुत नाराज़ हैं। उन्होंने हुक्म दिया कि नौजवान को बाहर निकाल दिया जाए और उससे कहा कि वह कभी भी वापस न आए। नौजवान बहुत घबराकर वहाँ से चला गया। वह एक पुरानी मसजिद में जाकर गिर पड़ा और सारी रात रोता हुआ फ़रियाद करता रहा, 'हे मेरे मौला! अब तेरे अलावा मेरा कोई सहारा नहीं है।' फिर अचानक ही उसके मन में बहुत शांति छा गई।

जैसे ही नौजवान का मन शांत हुआ, मुर्शिद ने मुरीदों को मोमबत्ती लाने के लिए कहा और वे सब ख़ानक़ाह से पुरानी मसजिद की तरफ़ चल पड़े। जब वे वहाँ पहुँचे, तब नौजवान अभी भी उस अजीब-सी हालत में था और ख़ुशी के आँसू बहा रहा था। 'मेरे मुर्शिद आपने मेरे साथ यह क्या किया, नाक़ामयाबी की इस हालत में होकर भी मैं ख़ुशी से भर गया हूँ।'...

मुर्शिद ने कहा, "मेरे बच्चे, तुमने सब कुछ और सभी को छोड़ दिया था, लेकिन अभी भी कोई था जो तुम्हारे और तुम्हारे ख़ुदा के बीच खड़ा था: वह मैं था! तुम्हारी उम्मीदों, ज़रूरतों और डर के मंदिर में सिर्फ़ मेरा ही बुत बचा था और उसे तुमसे दूर हटाने की ज़रूरत थी ताकि तुम अपनी ख़ुदी को मिटाकर उस महबूब की पनाह ले सको। अब उठो, चलो हम इस जीत का जश्न मनाएँ।"

सभी कामिल मुर्शिदों की तरह अबू-सईद ने भी ज़िंदगी भर एक ही पैग़ाम दिया। अपने आख़िरी वक़्त में उन्होंने अपने मुरीदों को नसीहत के ये अल्फ़ाज़ कहे, "ख़ुदा को कभी न भूलो, एक पल के लिए भी नहीं। तुम्हें पता है कि मैंने ज़िंदगी में कभी तुम्हें अपने पास नहीं बुलाया। मैंने ज़ोर देकर यही कहा है कि असल में हमारी कोई हस्ती नहीं है। मैं कहता हूँ कि ख़ुदा की हस्ती है और यही काफ़ी है।"

आध्यात्मिक मार्गदर्शक, भाग2

ऑस्कर पुरस्कार

मार्च के शुरू में अमेरिका के लॉस एंजेलिस शहर में हॉलीवुड फिल्म उद्योग का वार्षिक पुरस्कार समारोह आयोजित होता है। 'द ऑस्कर्स' के नाम से मशहूर इस समारोह में सर्वश्रेष्ठ फिल्म, सर्वश्रेष्ठ अभिनेता और सर्वश्रेष्ठ अभिनेत्री जैसी विभिन्न श्रेणियों में शानदार प्रदर्शन के लिए सम्मानित किया जाता है। 'रेड कार्पेट' से आगे बढ़कर अमर-अविनाशी जगत में पहुँच चुके संत-महात्मा अकसर स्थूल जगत को परमात्मा का खेल कहते हैं। अगर हम इसी उपमा को आगे बढ़ाते हुए कल्पना करें कि यह संसार एक भव्य फिल्म के रूप में हमारे सामने आता है तो हम दिव्य ऑस्कर कैसे जीत सकते हैं?

परमात्मा रूपी निर्माता दो आधारों पर हमें भूमिकाएँ सौंपता है: पहला, कर्मों को ख़त्म करने के लिए और दूसरा, जिन भूमिकाओं को पाने के लिए हमने पिछले जन्मों में ऑडिशन दिया था। ये ऑडिशन – जिनकी मूल वजह हमारी अधूरी रह गईं इच्छाएँ हैं – हमारे इस जीवन में प्रेम, आनंद या दु:ख-दर्द के रूप में प्रकट होते हैं। इसलिए, साथी कलाकारों द्वारा निभाई गई भूमिकाओं की चाहत रखना व्यर्थ है क्योंकि परमात्मा रूपी निर्माता बहुत ज़्यादा दयालु है और इसलिए वह हमें उन सभी भूमिकाओं को निभाने का मौक़ा देगा जिन्हें हम निभाना चाहते हैं। चूँकि हम एक समय में केवल एक ही भूमिका निभा सकते हैं तो दूसरी भूमिकाओं को निभाने की चाहत रखने का मतलब है जन्म और मृत्यु के अनंत चक्र में फँसे रहकर एक फिल्म पूरी करने के बाद दूसरी फ़िल्म शुरू करना।

ज़्यादा सोचे बिना, जो भी भूमिका हमें निभाने के लिए मिली है, उसे ख़ुशी-ख़ुशी स्वीकार कर लेना चाहिए। चाहे हम करोड़पति की भूमिका निभाएँ या भिखारी की, इससे क्या फ़र्क़ पड़ता है? असली सूझ तभी आती है जब हमें इस बात का एहसास होने लगता है कि हमारे जीवन का घटनाक्रम केवल एक भ्रम है। इसका मतलब है कि हमें सौंपी गई भूमिकाओं को ईमानदारी से निभाना है मगर लिखी हुई इस कहानी को ही

परम सत्य नहीं समझ लेना है। परिपक्वता के इस स्तर पर पहुँचने के लिए हमें अपनी पहचान को उन भूमिकाओं के साथ जोड़ने से बचना है जो हमें हमारे किरदारों से बाँध देती हैं और साथी कलाकारों के प्रति करुणा, उदारता और दया के रूप में लगाव पैदा कर देती हैं। जीवन रूपी नाटक के नश्वर पात्रों के साथ लगाव बढ़ाने के बजाय परमात्मा रूपी निर्माता को प्रेम करके हम इस नाटक के अंत में अलौकिक प्रकाश का अनुभव करके अपना चिरस्थायी पुरस्कार प्राप्त कर सकते हैं।

जिस तरह एक अभिनेता को पुरस्कार जीतने के लिए एक कुशल निर्देशक की ज़रूरत होती है, उसी तरह हमारे मार्गदर्शन के लिए भी 'शब्द' निर्देशक (शब्द गुरु) की आवश्यकता है। ऐसा विरला रूहानी मार्गदर्शक जो परमात्मा रूपी निर्माता से निकलती हुई शब्द-धुन से जुड़ा हुआ हो। केवल 'शब्द' निर्देशक के मार्गदर्शन में ही हम जीवन की इस भ्रमपूर्ण पटकथा से बेलाग होना सीख सकते हैं और दिव्य पुरस्कार अकादमी द्वारा प्रदान किया जानेवाला सर्वोच्च सम्मान प्राप्त कर सकते हैं: परमात्मा रूपी निर्माता के साथ मिलाप। इस दिव्य ऑस्कर को प्राप्त करने के लिए हमें 'शब्द' निर्देशक के साथ किए गए कॉन्ट्रैक्ट का पालन पूरी संजीदगी से करना होगा। इस कॉन्ट्रैक्ट में इस जीवन के रूप में मिली भूमिका को निभाने के लिए हमसे क्या उम्मीदें रखी गई हैं:

1. 'शब्द' निर्देशक (सतगुरु) पर भरोसा करना, भले ही जीवन में जो कुछ हो रहा है, वह हमें पसंद न हो।
2. दूसरे कलाकारों के साथ बहुत ज़्यादा लगाव न रखना, चाहे वे माता-पिता, पति-पत्नी या दोस्तों की भूमिका ही क्यों न निभा रहे हों। वे केवल इस दिव्य नाटक के पात्र हैं।
3. अपने सबसे करीबी कलाकारों की विदाई (मृत्यु) पर शोक न मनाना। मृत्यु जीवन रूपी नाटक का एक अभिन्न अंग है और हमें इसे

अपने अनुभव पर हावी नहीं होने देना चाहिए। फिल्मांकन (जीवन) चलता रहता है।

4. जब भी कैमरे के सामने न हों, 'शब्द' निर्देशक द्वारा दिए गए मंत्र का जाप करें यानी कि पाँच नाम का सिमरन।

जब हम कॉन्ट्रैक्ट की शर्तों को पूरा कर लेते हैं तब हम ख़ुद को भविष्य की भूमिकाओं और एक फिल्म पूरी करके दूसरी शुरू करने के अनंत चक्र से मुक्त कर लेते हैं। हमारा अभिनय चाहे कितना भी ख़राब क्यों न हो, 'शब्द' निर्देशक हमें सदा प्रोत्साहित करता है कि हमें कभी निराश नहीं होना है, अकेला महसूस नहीं करना है या हिम्मत नहीं हारनी है क्योंकि हर दृश्य हमें परमात्मा रूपी निर्माता के क़रीब ले जाता है। इसलिए मृत्यु के समय जब हमारी भूमिका समाप्त हो जाती है तब इस सृष्टि में से कुछ भी हमारे साथ नहीं जाता, यहाँ तक कि हमारा शरीर भी नहीं। केवल भजन-बंदगी ही हमारे साथ जाती है जो सचखंड पहुँचने के लिए पुल के समान है। इसलिए संसार रूपी मंच के कोलाहल और साथी कलाकारों के अहं-साथ ही अपने अहं-से बचने के लिए, हमें अपनी ज़िम्मेदारी को पूरा करना ही होगा। 'शब्द' निर्देशक द्वारा दिए निर्देशों और अपने कर्त्तव्य का पालन करके, हम यक़ीनन दिव्य ऑस्कर प्राप्त कर सकते हैं।

हॉलीवुड में होनेवाले पुरस्कार समारोह के विपरीत, जब हमें अपना दिव्य ऑस्कर मिलेगा तब हम सह-अभिनेताओं, फिल्म जगत के पेशेवरों और जानी-मानी हस्तियों के साथ बैठने के लिए वापस ऑडिटोरियम में नहीं जाएँगे। हम रंगमंच से उतरकर 'शब्द' निर्देशक की अगुआई में चलेंगे जो हमें निज-घर की ओर ले जाएगा, जहाँ कुछ भी असत्य नहीं है, जहाँ न किसी फिल्म का सेट है, न कोई अभिनेता है, वहाँ सिर्फ़ 'शब्द-गुरु' ही परम सत्य है।

सेवा—प्रेरणा और नज़रिया

'सेवा' संस्कृत भाषा का शब्द है जिसका मतलब है 'निस्स्वार्थ सेवा' या 'निष्काम कर्म'। सत्संगी होने के नाते, हमारी मुख्य सेवा हर रोज़ भजन-सिमरन के अभ्यास द्वारा सुरत की सेवा करना है। महाराज चरन सिंह जी अपनी पुस्तक संत संवाद, भाग3 में समझाते हैं कि भजन-सिमरन को अपनी आत्मा और परमात्मा दोनों की सेवा क्यों कहा जाता है:

> *सेवा का मतलब है किसी की सेवा करना, इसलिये हम अपनी ही सेवा कर रहे हैं। यह आत्मा की सेवा है। ...अभी हमें इस बात का ज्ञान नहीं कि हमारी असली हस्ती आत्मा है। हम सोचते हैं कि हमारी असली हस्ती हौंमैं, शरीर और मन है। आत्मा ही हमारा असल है, शरीर या हौंमैं नहीं, इस सत्य का ज्ञान होना भी सेवा है। ...दरअसल यह आत्मा की सेवा है। हम एक तरह से अपने आप पर तरस खा रहे हैं, अपनी आत्मा पर तरस खा रहे हैं।*

चूँकि अंत में आत्मा को परमपिता परमात्मा का ही रूप बनना है, इसलिये इसे परमात्मा की सेवा कहा जाता है।

जैसे बाहरी तौर पर संगत की सेवा करना सतगुरु की सेवा करना है, वैसे ही भजन-सिमरन के ज़रिए अपनी आत्मा की सेवा करना परमात्मा की सेवा करना है। जब हमें नामदान मिला था तब हमने यह वायदा किया था कि हम हर रोज़ ढाई घंटे भजन-सिमरन को देंगे। यह एक वायदा है जिसे निभाने की उम्मीद सतगुरु हमसे करते हैं। अगर हम सचमुच रूहानी सफ़र तय करके जन्म-मरण के चक्र से हमेशा के लिए मुक्ति पाना चाहते हैं तो इस वायदे को पूरा करने के अलावा कोई रास्ता नहीं है। असल में, संत-महात्माओं ने समझाया है कि अपने सतगुरु के लिए प्यार ज़ाहिर करने का हर रोज़ भजन-सिमरन करने से बेहतर कोई ज़रिया नहीं है।

हालाँकि भजन-सिमरन सतगुरु की सेवा करने का सबसे अच्छा तरीक़ा है लेकिन संत-महात्मा हमें नसीहत देते हैं कि हमें रोज़ाना भजन-सिमरन को समय देते हुए हद को पार नहीं करना चाहिए। इसके बजाय, हम अपना ख़ाली समय तन की सेवा में लगा सकते हैं जैसा कि नीचे दिए गए उद्धरण में बताया गया है, जिसका दोहरा फ़ायदा यह होता है कि इससे सतगुरु के लिए हमारा प्यार और ज़्यादा गहरा होता है तथा भजन-सिमरन भी बेहतर होता है:

> *असलियत यह है कि हम सारा दिन तो भजन-सिमरन कर नहीं सकते, और अपने रोज़मर्रा के कामकाज के बावजूद हमारे पास काफ़ी समय भी बच जाता है। उस वक़्त सेवा इस प्रेम को और अधिक सींचने का ज़रिया बनती है, जिससे दिन भर उस प्रेम के माहौल में रहने में मदद मिलती है; और इससे अगले दिन भजन-सिमरन में मदद मिलती है।*
>
> *सेवा*

सतगुरु के लिए हमारा प्यार और उनकी सेवा करने की इच्छा हमें तन की सेवा करने के मौके ढूँढ़ने के लिए प्रेरित करती है। हम अपने सत्संग-घर में फ़र्श धोकर हर हफ़्ते होने वाले सत्संग की तैयारी में मदद कर सकते हैं, संगत के लिए यातायात की व्यवस्था कर सकते हैं ताकि वे सतगुरु द्वारा दिए जानेवाले सत्संग प्रोग्राम में शामिल हो सकें या ट्रैफ़िक का संचालन कर सकते हैं। प्यार हमें सेवा करने के लिए प्रेरित कर सकता है लेकिन हमें सावधान रहना चाहिए कि जो ज़िम्मेदारी हमें सौंपी गई है उसे निभाते हुए हमारे अंदर अहंकार न आ जाए। उदाहरण के लिए, हो सकता है कि हम यह सोचना शुरू कर दें कि संगत को हमारी निष्ठा और सेवा करने की क़ाबिलीयत से फ़ायदा हो रहा है। सेवा पुस्तक में दिया गया एक किस्सा बड़े सुंदर ढंग से दर्शाता है कि हम इतने भी महत्वपूर्ण नहीं हैं। सतगुरु के सत्संग कार्यक्रम के दौरान, एक सेवादार को प्रबंधकीय ज़िम्मेदारी को छोड़कर किसी दूसरे काम पर ध्यान देने के लिए कहा गया। उसने ऐसा ही किया:

...लेकिन वह सारे समय यही सोचता रहा कि वहाँ सेवा पर उसकी ज़रूरत थी। उस काम से फ़ारिग होकर जब वह पुरानी जगह वापस पहुँचा जहाँ वह सेवा छोड़कर गया था, तो उसने देखा कि वहाँ पौधा लगा एक गमला रखा हुआ था... तब उसे अहसास हुआ कि सेवा में उसकी क्या हैसियत है: सतगुरु तो गमले से भी अपना काम करवा सकते हैं।

ऐसी छोटी-छोटी घटनाओं से, हम अहं-भाव को छोड़ना सीखते हैं और हमें एहसास होता है कि सच्ची सेवा सिर्फ़ सतगुरु के हुक्म से होती है। महाराज सावन सिंह जी पुस्तक प्रभात का प्रकाश में, हमें ऐसी सोच बनाने के लिए प्रेरित करते हैं कि हम सिर्फ़ परमात्मा के हाथों की कठपुतलियाँ हैं और सेवा वही कर रहा है – हम नहीं:

जितनी सहायता आप औरों की करेंगे, उतना ही अच्छा है। लेकिन यह ध्यान रखना चाहिये कि यह कार्य सतगुरु की सेवा समझ कर किया जाये और इसके बारे में अपने मन में लेश-मात्र भी अहंकार पैदा नहीं होने दिया जाये। यही सोचें कि जो कुछ किया जा रहा है वह सतगुरु कर रहा है, हम नहीं।

जैसा कि महाराज सावन सिंह जी फ़रमाते हैं कि सेवा हम नहीं करते बल्कि सेवा तो सतगुरु करवाते हैं। चूँकि सेवा का मक़सद अपने अहंकार को ख़त्म करना है, जबकि विडम्बना यह है कि अगर हम यह मानने लग जाएँ कि हमारी सेवा किसी और की सेवा से ज़्यादा महत्त्वपूर्ण है तो इसका विपरीत असर हो सकता है। सतगुरु इस बात पर ज़ोर देते हैं कि सभी सेवाओं का महत्त्व समान है; एक तरह की सेवा दूसरी से ज़्यादा महत्त्वपूर्ण नहीं होती। इसलिए, विनम्रता से सेवा करने का एक तरीक़ा यह है कि सेवा करते समय सतगुरु के स्वरूप का ध्यान करते हुए या सिमरन करते हुए उन्हें लगातार याद करते रहें।

अपने अहंकार को धीरे-धीरे ख़त्म करने के साथ-साथ, सेवा हमारे अंदर ऐसे गुण पैदा करती है जो सिर्फ़ दूसरों के साथ काम करके ही विकसित किए जा सकते हैं: दया, करुणा, सहनशीलता और प्यार। जैसा कि फ़ारसी कवि मौलाना रूम ने 'मसनवी' में कहा है, अगर हर मुश्किल हमें निराश कर दे, तो हम अपना आईना कैसे चमकाएँगे? यह सोचकर सेवा करना बिलकुल गलत है कि नतीजा सबसे ज़्यादा अहम है। काम के प्रति जुनून इस हद तक बढ़ सकता है कि जब चीज़ें हमारी योजना के अनुसार नहीं होतीं तब हम दूसरे सेवादारों से निराश हो सकते हैं। हालाँकि, हमारी सेवा से किसी को तकलीफ़ नहीं पहुँचनी चाहिए; अगर हम अपने शब्दों या करनी से दूसरों को दु:ख पहुँचाते हैं तो हम यह समझ ही नहीं पाए हैं कि असल में सेवा किसे कहते हैं। दूसरों के साथ सेवा करके, हम धीरे-धीरे अपनी हौंमैं – घमंड, अभिमान और लगाव – से छुटकारा पा लेते हैं, जिससे हमारा हृदय रूपी आईना प्यार और करुणा से चमकने लगता है।

इस लेख की शुरुआत हमने इस कथन से की थी कि सेवा का मतलब है 'निस्स्वार्थ सेवा' या 'निष्काम कर्म' और संतमत में, हमारी मुख्य सेवा हर रोज़ भजन-सिमरन द्वारा सुरत की सेवा करना है। अलग-अलग तरह की बाहरी सेवा में हमारी ओर से दिए गए योगदान से संगत को लाभ प्राप्त हो सकता है, लेकिन मुख्य रूप से इसमें हमारा ही भला होता है। सेवा धीरे-धीरे हमारे अहं-भाव को कम करती है क्योंकि सेवा में हम अपने आप को सर्वोत्तम समझे बिना, अगुआई किए बिना या अपनी मर्ज़ी दूसरों पर थोपे बिना दूसरों के साथ मिल-जुलकर काम करना सीखते हैं। यह सब इस संसार में हमारे काम करने के ढंग के बिलकुल विपरीत है। जैसे-जैसे हम सत्संगी साथियों के साथ ज़्यादा सेवा करते हैं वैसे-वैसे हम इस स्थूल जगत से बेलाग होने लग जाते हैं। इससे हमारा ध्यान रूहानियत की तरफ़ हो जाता है और यह 'ख़ुदी' को भूलने में हमारी मदद करता है। बिना कोई

उम्मीद रखे हम जितनी ज़्यादा सेवा करते हैं, असल में उतना ही ज़्यादा हमें इसमें आनंद आने लगता है।

इस सब से हमें प्रेरणा मिलती है कि तन की सेवा क्यों करनी है। पर अगर हम गहराई से सोचें तो इस सबके पीछे एक ही कारण है जो आख़िरकार सभी रुकावटों और चुनौतियों से ऊपर है और वह है: सतगुरु के लिए हमारा प्यार और उनकी सेवा करने की हमारी इच्छा। सतगुरु से प्यार करने का मतलब है उनकी संगति में रहने और अपने आप को उन्हें समर्पित कर देने की इच्छा। 'आदि ग्रंथ' में दर्ज गुरु अमरदास जी के शब्दों में:

तनु मनु धनु सभु सउपि गुर कउ हुकमि मंनिऐ पाईऐ॥

यहूदी उपदेशक की सीख

यहूदी उपदेशक जोशुआ को सभी बहुत पसंद करते थे, वह हमेशा ख़ुश रहते थे, सबके साथ दयालुता से पेश आते थे। उनके छोटे-से शहर का यहूदी समुदाय उनके करुणामय और विनम्र स्वभाव की सराहना करता था। हालाँकि, एक बात थी जिसे लेकर वह बड़े संजीदा थे—वह था धर्म और परमात्मा के बारे में बात करना। उनके लिए उपदेश देना और परमात्मा की सेवा करना उनकी सबसे बड़ी ज़िम्मेदारी थी और वह इसे बड़ी गंभीरता से लेते थे। उनका उपदेश सैबथ सर्विस में अहम माना जाता था। समय के साथ, एक बेहतरीन वक्ता के तौर पर उनकी प्रसिद्धि आस-पास के गाँवों और शहरों में फैल गई।

जोशुआ की प्रसिद्धि के बारे में सुनकर, पास के शहर के सिनेगॉग के बड़े-बुज़ुर्गों ने उन्हें एक शाम प्रवचन देने के लिए बुलाया। उन्होंने न्योता स्वीकार कर लिया। सिनेगॉग पहुँचने पर, गर्मजोशी से उनका स्वागत किया गया और उन्हें मंच पर ले जाया गया। उन्होंने देखा कि वहाँ बहुत ज़्यादा भीड़ थी लेकिन वे सब बातों और गपशप में इतने मसरूफ़ थे कि उनकी तरफ़ किसी ने ध्यान भी नहीं दिया। इतने संजीदा विषय पर प्रवचन देने के लिए माहौल ज़्यादा अनुकूल नहीं था। उन्होंने ऊँची आवाज़ में कहा, "मैं जोशुआ हूँ। क्या आप जानते हैं कि मैं क्या कहने वाला हूँ?" लोगों ने बात करना बंद कर दिया और किसी ने जवाब दिया: "नहीं, हमें नहीं पता।" यह सुनकर जोशुआ ने कहा: "मुझे ऐसे लोगों से बात करने में कोई दिलचस्पी नहीं है जो यह भी नहीं जानते कि मैं किस विषय पर बात करने वाला हूँ," और वह मुड़े और वापस चले गए।

वहाँ मौजूद सभी लोग बहुत शर्मिंदा हुए। अगले दिन बुज़ुर्गों ने मिलकर जोशुआ से माफ़ी माँगने का और उन्हें फिर से प्रवचन देने के लिए बुलाने का फ़ैसला किया। जोशुआ मान गए और अगले हफ़्ते फिर से सिनेगॉग आए। इस बार श्रोताओं का बर्ताव बेहतर था और वे धैर्यपूर्वक इंतज़ार कर

रहे थे। वह मंच तक गए और उन्होंने फिर से धार्मिक सभा से पूछा, "क्या आप जानते हैं कि मैं क्या कहने वाला हूँ?" उन्होंने जवाब दिया, "जी हाँ, हमें पता है।" जोशुआ ने उत्तर दिया: "ठीक है, क्योंकि आप पहले से ही जानते हैं कि मैं क्या कहने वाला हूँ, इसलिए मैं आपका और समय बर्बाद नहीं करूँगा," और वह चले गए।

वहाँ मौजूद सभी लोग बहुत उलझन में पड़ गए। उन्होंने इस बात पर सोच-विचार किया कि उनके सवाल का सही जवाब क्या होगा। इसलिए उन्होंने जोशुआ को दोबारा न्योता दिया, उन्हें भरोसा था कि अगर उन्होंने वही सवाल पूछा तो उन्हें पता है कि क्या कहना है।

एक बार फिर जोशुआ लौटे, मंच तक गए और उन्होंने फिर से वही सवाल पूछा: "क्या आप जानते हैं कि मैं क्या कहने वाला हूँ?" आधे लोगों ने जवाब दिया, "जी हाँ, हम जानते हैं," और बाकी आधे लोगों ने जवाब दिया, "नहीं, हम नहीं जानते।" जोशुआ ने कहा: "आधे लोग जो जानते हैं कि मैं क्या कहने वाला हूँ, वे बाक़ी के आधे लोगों को बता सकते हैं।" इतना कहकर वह फिर से लौट गए।

सब लोग हक्के-बक्के रह गए। वे हार नहीं मानना चाहते थे, इसलिए उन्होंने जोशुआ से आख़िरी बार आने के लिए विनती की, इस उम्मीद में कि इस बार वे सब सही जवाब देंगे। जोशुआ मान गए। जब वह पहुँचे और मंच तक गए, तो उन्होंने फिर से वहाँ मौजूद सभी लोगों से पूछा, "क्या आप जानते हैं कि मैं क्या कहने वाला हूँ?" इस बार श्रोताओं ने एक शब्द भी नहीं कहा बल्कि वे बिलकुल चुप बैठे रहे, उनकी आँखें जोशुआ पर टिकी रहीं। जोशुआ के चेहरे पर हल्की-सी मुस्कान आई और उन्होंने प्रवचन देना शुरू कर दिया।

यह एक प्रसिद्ध कहानी है जिसका ज़िक्र सूफ़ी, हिंदू और बौद्ध सहित कई आध्यात्मिक परंपराओं में आता है। ज़्यादातर धार्मिक ग्रंथों में सिर्फ़ पहले तीन संवाद दिए गए हैं और आख़िरी संवाद छोड़ दिया गया है,

जब श्रोता चुपचाप बैठे होते हैं। यह खेदजनक है क्योंकि आख़िरी संवाद जोशुआ के बर्ताव की वजह बताता है। उन्होंने लोगों की मनोदशा को देखा और उन्हें इस लायक़ बनाने का प्रयास किया कि वह जो कहने वाले थे, श्रोता उसे ग्रहण करने के लिए तैयार रहें–उनके मन में से पहले से बनी धारणाओं को निकालकर जो वे सोचते थे कि वे जानते हैं और जो वे सोचते थे कि वह (जोशुआ) कहेंगे। वह चाहते थे कि वे ख़ाली पात्रों की तरह बन जाएँ जो पूरी तरह से ग्रहण करने के लायक़ हों। जब उन्होंने देखा कि श्रोता शांत और सुनने के लिए तैयार हैं, यह महसूस करते हुए कि वे उलझन में हैं और वे कुछ भी समझ नहीं पा रहे हैं तब उन्होंने उपदेश देना शुरू किया।

स्टोरीज़ फ्रॉम द हार्ट

कथनी से करनी भली

ऐसे लोग विरले होते हैं जिनकी कथनी और करनी समान होती है और हम ऐसे लोगों की तरफ़ खिंचे चले जाते हैं। उनकी दृढ़ता और ईमानदारी हमें प्रेरणा देती है और हमें यह सोचने पर मजबूर करती है कि क्या हमारी कथनी और करनी एक जैसी है। परमार्थ में हमारी करनी का हमारी कथनी के मुताबिक़ होना ख़ास तौर पर ज़रूरी है, जहाँ अभ्यास सबसे अहम है।

खोखली परमार्थी बातें

'ए स्पिरिचुअल प्राइमर' पुस्तक में, लेखक ने बताया है कि आधुनिक संस्कृति में इस भ्रम को बढ़ावा दिया जाता है कि सच्ची ख़ुशी और संतुष्टि "ज़्यादा धन-दौलत, ज़्यादा ऊँची पद्वियों, ज़्यादा शोहरत, ज़्यादा ज़मीन-जायदाद, हर चीज़ को ज़्यादा" हासिल करने से मिलती है। ऐसी जीवन-शैली अपनाना जिसका मक़सद आंतरिक शांति और संतोष की खोज है, इस प्रचलित सोच को चुनौती देता है। ऐसे में, जब हम दूसरे सत्संगियों से मिलते हैं तब हम स्वाभाविक तौर पर परमार्थ की चर्चा शुरू कर देते हैं। ये बातचीत न केवल संतमत में हमारी साझी दिलचस्पी को दर्शाती है बल्कि एक-दूसरे को प्रेरणा देने, ऊँचा उठाने और सहारा देने का एक अहम ज़रिया भी है। असल में, हममें से कई लोगों को रूहानियत के बारे में ऐसी बातचीत याद होगी जिसने ज़िंदगी की कड़ी चुनौतियों में हमें प्रोत्साहित किया हो, हमारा मार्गदर्शन किया हो या हमें तसल्ली दी हो।

हालाँकि अगर हम सिर्फ़ अपने ज्ञान का प्रदर्शन करने के लिए बातचीत करते हैं और रूहानी अभ्यास नहीं करते हैं तो रूहानियत के बारे में चर्चा करना व्यर्थ है। जब हम रूहानियत को सिर्फ़ कथनी तक सीमित रखते हैं तब हम संतमत का असली मक़सद समझ नहीं पाते और हम इस धोखे में रहते हैं कि हम संतमत की शिक्षाओं का पूरी निष्ठा से पालन कर रहे हैं। महाराज चरन सिंह जी प्रकाश की खोज पुस्तक में, संतमत के प्रति अपने

उत्साह का बाहरी प्रदर्शन करने के बारे में चेतावनी देते हैं क्योंकि यह हमें लक्ष्य से भटका देता है जोकि मन को स्थिर करना है:

> *संतमत के प्रति अपने उत्साह को बाहर प्रकट नहीं करना चाहिये। असल में इस बाहरी उत्साह की वजह से मन और भी चंचल हो जाता है, जबकि संतमत में हमारी सब कोशिशें और मेहनत मन को शांत और स्थिर करने के लिये होती हैं। संतमत के उत्साह को भीतर हज़म करना चाहिये और इसे गहरी दीनता तथा परमात्मा और सतगुरु के प्रति अधिक प्रेम और भक्ति के रूप में बदल देना चाहिये। केवल शब्दों और भावनाओं के द्वारा व्यक्त किये गए ज़बानी प्रेम और भक्ति का संतमत में महत्त्व नहीं है। आवाज़ दिल से आनी चाहिये। हमारी सच्ची लगन का अंदाज़ा हमारे अंदर उत्पन्न दीनता और कोमलता से लगाया जाता है।*

आप संतमत की शिक्षाओं पर अमल करने की अहमियत पर बल देते हुए फ़रमाते हैं कि यह करनी का मार्ग है, जीवन जीने का तरीक़ा है जिसे अपनाया जाना चाहिए। सिर्फ़ प्यार और श्रद्धा भरे लफ़्ज़ बोलना जज़्बातों को प्रकट करने के अलावा कुछ नहीं है जो समय के साथ ख़त्म हो जाते हैं। इसके बिलकुल उलट, सतगुरु के प्रति प्यार और भक्ति का इससे ज़्यादा बेहतर इज़हार और कोई नहीं है कि हम रोज़-रोज़ दृढ़ इरादे से भजन-सिमरन करें, ख़ासकर तब, जब हमारा ऐसा करने का बिलकुल मन न हो। जब हम मन के बहानों या दलीलों पर ध्यान देने के बजाय अपना भजन-सिमरन करते हैं तब यह हृदय से निकली सच्ची पुकार बन जाता है। भले ही हमें पाँच नाम के सिमरन को एक बार करने के लिए भी संघर्ष करना पड़े, मन के साथ यह लड़ाई और अपने भजन-सिमरन को न छोड़ना सतगुरु के लिए हमारे सच्चे प्यार को दर्शाता है। सच्चे दिल से किए गए इस तरह के समर्पण से धीरे-धीरे हमारे अंदर विनम्रता और करुणा आने लगती है। महाराज चरन सिंह जी फ़रमाते हैं कि यह शब्दों की तुलना में संतमत के प्रति हमारे उत्साह का ज़्यादा स्पष्ट संकेत है।

रूहानियत: किताबी ज्ञान से परे

रूहानियत का दिखावा करने की प्रवृत्ति सिर्फ़ बातचीत तक ही सीमित नहीं होती। जैसे करनी के बिना शब्द खोखले हो सकते हैं, वैसे ही ज़रूरत से ज़्यादा रूहानी साहित्य का अध्ययन करने से एक अन्य तरह के दिखावे में पड़ जाने का ख़तरा पैदा हो सकता है, जिसमें करनी के बजाय ज्ञान को प्राथमिकता दी जाती है। इसलिए, जिस तरह हमें रूहानी अभ्यास से विमुख करनेवाली खोखली बातें करने से बचना चाहिए, उसी तरह हमें इस बात को लेकर भी सचेत रहना चाहिए कि हमारा उत्साह ज्ञान प्राप्त करने के लिए सिर्फ़ किताबें पढ़ने तक ही सीमित न रह जाए। असल में, यह भावना परमार्थी किताबें ख़रीदने की हमारी उत्सुकता के रूप में भी प्रकट होती है। उदाहरण के लिए, संस्था द्वारा जब भी कोई नई पुस्तक प्रकाशित की जाती है तब हम उसे ख़रीदने के लिए आतुर रहते हैं। इसी तरह, जब किसी अन्य मत की शिक्षाएँ संतमत के साथ मिलती-जुलती लगती हैं तब हम उस ज्ञान को दूसरों के साथ साझा करने के लिए उतावले हो जाते हैं। यह उतावलापन इस बात का संकेत है कि हम परमार्थ को इस्तेमाल की वस्तु समझ रहे हैं, जो ज्ञान हासिल करने और उस ज्ञान का प्रदर्शन करके ख़ुद को आलिम-फ़ाज़िल (गुणी-ज्ञानी) साबित करने की हमारी आतुरता को दर्शाता है। फिर, चाहे हम दर्जन-भर किताबें पढ़ें या सौ, सार संदेश एक ही है: अहमियत इस बात की है कि हम देहधारी सतगुरु द्वारा सिखाए गए रूहानी अभ्यास के ज़रिए अपनी सुरत को शब्द के साथ जोड़ें।

परमार्थ के बारे में पढ़ने से हमारा ज्ञान बढ़ सकता है लेकिन न तो यह अंतर्ज्ञान प्रदान करता है और न ही सत्य का अनुभव करवाता है जिसकी हमें तलाश है। महाराज चरन सिंह जी *संत-मार्ग* पुस्तक में, तुलसी साहिब के एक दोहे का हवाला देते हैं जो रूहानी अभ्यास किए बिना धर्म-ग्रंथों को पढ़ने के जोखिम को दर्शाता है:

चार अठारह नौ पढ़े, षट पढ़ि खोया मूल।
सुरत सबद चीन्हे बिना, ज्यों पंछी चंडूल॥

तुलसी साहिब चेतावनी देते हैं कि हमें धर्म-ग्रंथों से प्राप्त ज्ञान को ही सच्चा आंतरिक अनुभव समझने की भूल नहीं करनी चाहिए। हिंदू धर्म के मुख्य ग्रंथों – नौ व्याकरणों, अठारह पुराणों, चार वेदों, और छह दर्शनों – के विद्वान होने पर भी आत्मज्ञान प्राप्त नहीं होता। धर्म-ग्रंथ मार्गदर्शन के लिए हैं, ये प्रत्यक्ष आध्यात्मिक अनुभव की जगह नहीं ले सकते। जब तक आत्मा शब्द में अभेद नहीं हो जाती, सिर्फ़ किताबों पर आधारित हमारा रूहानी ज्ञान उस तोते की तरह है जो बिना मतलब समझे शब्दों को दोहराता रहता है।

हालाँकि तुलसी साहिब की बानी में ख़ास तौर पर हिंदू ग्रंथों का ज़िक्र है लेकिन यह सभी धर्म-ग्रंथों पर लागू होता है। धर्म-ग्रंथ सिर्फ़ ज़रिया हैं, अंतिम लक्ष्य नहीं – इस बात पर सिर्फ़ तुलसी साहिब ही बल नहीं देते बल्कि दूसरी धार्मिक परंपराओं का भी यही मानना है जैसे कि ज़ेन बौद्ध धर्म चाँद की ओर इशारा करनेवाली उंगली को चाँद समझने की भूल न करने की नसीहत देता है। जानकारी के इस युग में, यह एक उपयोगी सुझाव है कि परमार्थी किताबें, सत्संग और सवाल-जवाब को पढ़ने-सुनने की वजह से हमें भजन-सिमरन करना नहीं छोड़ देना चाहिए। तुलसी साहिब दृढ़तापूर्वक कहते हैं कि सत्य रूपी सार-तत्त्व बाहरी साधनों द्वारा नहीं, बल्कि आंतरिक शब्द-धुन को ध्यानपूर्वक सुनने से प्राप्त होता है।

रूहानी अभ्यास अपनाना

चूँकि संतमत के लिए अपने उत्साह को लफ़्ज़ों या अध्ययन द्वारा प्रकट करने का कोई ख़ास लाभ नहीं है, नीचे दिए गए उद्धरण भजन-सिमरन के महत्त्व की पुष्टि करते हैं जिसके बारे में हमें पहले ही समझाया जा चुका है:

> *केवल नाम पा लेने से ही कोई सत्संगी नहीं बन जाता। सत्संगी को अपने जीवन को संतमत के साँचे में ढालना चाहिए। उसका हर एक विचार, वचन और कर्म संतमत के उसूलों के अनुसार होना चाहिए। कथनी से करनी ज़्यादा ज़रूरी है।*
>
> महाराज जगत सिंह जी, *आत्म-ज्ञान*

संतमत करनी का मार्ग है, कथनी का नहीं। केवल वही समय आपके खाते में जमा होता है जो आप अपने सिमरन और भजन में लगाते हैं। उस संपूर्ण प्रेम को, जिसे आप शब्दों में प्रकट कर रहे हैं, भजन-सिमरन का रूप लेना चाहिये। केवल तभी वह फलप्रद होगा। तब वह कई गुना बढ़ेगा और मालिक की अपार दया लाएगा।

महाराज चरन सिंह जी, प्रकाश की खोज

कथनी के बजाय करनी पर ज़ोर देकर दोनों उद्धरण इस बात की तरफ़ संकेत करते हैं कि रूहानी सफ़र का प्रेम के दिखावे से कोई संबंध नहीं है। जैसा कि महाराज जगत सिंह जी नीचे दिए गए उद्धरण में फ़रमाते हैं, हमें अभ्यास करने, ज़्यादा अभ्यास करने, और भी ज़्यादा अभ्यास करने की ज़रूरत है। इस बात को समझते हुए, क्या हमें संतमत और सतगुरु के प्रति सम्मान को, अपने इरादों को करनी में बदलकर ज़ाहिर नहीं करना चाहिए?

परमार्थ के मार्ग में कामयाबी का गुर है—'भजन, ज़्यादा भजन, और ज़्यादा भजन।'

महाराज जगत सिंह जी, आत्म-ज्ञान

***

दरअसल, हम प्रकाशमय जीव हैं। हम प्रकाश के सिवाए कुछ नहीं है; लेकिन हमारा फैला हुआ मन इस बात से बेख़बर है और सिर्फ़ अंधकार देखता है। अंधकार में ध्यान लगाने से और उसका आनंद लेने से, अंधकार प्रकाश में बदल जाएगा। अंधेरे में ध्यान टिकाने का मक़सद अंतर्दृष्टि विकसित करना है ताकि प्रकाश दिखाई दे।

अवेयरनेस ऑफ़ द डिवाइन

संक्षेप में सत्य

आपको अपने कर्मों का भुगतान ख़ुद करना है। जब कोई व्यक्ति जंगल में जाता है, अगर उसके हाथ में कोई बंदूक या तलवार हो, तो वह किसी भी जंगली जानवर का सामना निडरता से कर सकता है। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि जिसने उस व्यक्ति को बंदूक या तलवार दी है, वही आकर जंगली जानवरों से छुटकारा दिलवाने में उसकी सहायता करे। आपको भजन-सिमरन करने की युक्ति बता दी गयी है। आपको अपनी सहायता ख़ुद करनी है। आपको अपने सारे प्रारब्ध कर्मों का भुगतान करने के लिये अपनी इच्छाशक्ति को मज़बूत करना है। कुछ हद तक सतगुरु भी आपकी सहायता करते हैं, लेकिन असल में आपको भजन-सिमरन के द्वारा अपनी मदद ख़ुद करनी है।

महाराज चरन सिंह जी, संत संवाद, भाग2

***

दाओवादियों का मानना है कि हमारा भविष्य हमारे ही हाथों में है। भाग्य पिछले जन्म के कर्मों का फल है। इसे बदला नहीं जा सकता, लेकिन हम अपना भविष्य बदल सकते हैं।

इंट्रोडक्शन टू द दाओ

***

अपने असली स्वरूप की पहचान करने के लिए जब हम संतों के बताए मार्ग पर चलने का इरादा पक्का कर लेते हैं तो सबसे पहले हमें इस बात को पूरी तरह से स्वीकार करना है कि हमें अपने हर कर्म और विचार का फल भोगना पड़ेगा...

हमारा वर्तमान हमारे पिछले विचारों और कर्मों का फल है। कर्म और कर्मफल के नियमानुसार हमारा भविष्य हमारे आज के विचारों और कर्मों

द्वारा तय किया जाएगा। इस समय हम अपनी निर्मल बुद्धि और विवेक द्वारा अपने जीवन के हर पल का इस्तेमाल इस तरह कर सकते हैं कि हमें न केवल इस जीवन में, बल्कि अनंत काल तक इसका फ़ायदा मिले।...

भजन-सुमिरन को अपने जीवन में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण बनाने में देर क्यों करें? भजन-सुमिरन के लिए यदि हम आज कोशिश नहीं करेंगे तो फिर कब करेंगे? हमें अपने आप से पूछना है कि अगर मैं भजन-सुमिरन नहीं करूँगा तो मेरी जगह और कौन करेगा?

हउ जीवा नाम धिआए

कर्म के जाल से आज़ादी

पुनर्जन्म और कार्य-कारण का सिद्धांत – जिसे आमतौर पर कर्म-सिद्धांत कहा जाता है – दो आध्यात्मिक नियम हैं जो एक साथ काम करते हैं। आत्मा का एक शरीर से दूसरे शरीर में सफ़र संयोगवश नहीं होता; बल्कि यह कर्मों के नियम के अनुसार होता है जिसमें गलती की कोई गुंजाइश नहीं होती। यह नियम ब्रह्मांड के ताने-बाने में बुना हुआ है, जिसका मतलब यह है कि आत्मा को अपनी हर करनी का परिणाम भुगतना ही पड़ता है, ठीक वैसे ही जैसे आग में हाथ डालने से हाथ का जलना निश्चित है। हालाँकि, आग से जलने का उदाहरण कर्म-फल के तुरंत नतीजे को दिखाता है लेकिन यह आत्मा के जन्म-जन्मांतर के सफ़र की व्याख्या कैसे है? संक्षेप में, आत्मा कर्मों का भंडार क्यों इकट्ठा कर लेती है?

संत-महात्मा समझाते हैं कि कर्मों का कानून बहुत पेचीदा और सूक्ष्म होता है। इसकी कार्यविधि इतनी सूक्ष्म और पेचीदा है जैसा कि महाराज जगत सिंह जी ने *साइंस ऑफ़ द सोल* पुस्तक में फ़रमाया है, "अगर अनाज का एक भी दाना पड़ोसी के खेत से अनजाने में हमारे अनाज के भंडार में आ गया है तो उसका भी हिसाब चुकाना पड़ेगा।" कुछ कर्मों का फल तुरंत मिल जाता है, तो कुछ का बाद में मिलता है और इसी वजह से आत्मा जन्म-मरण के चक्कर में फँस जाती है।

इस मनुष्य-जन्म में हमारी आत्मा अपने 'प्रारब्ध' कर्मों के रूप में थोड़े-से कर्मों का भुगतान दे रही है – हमारे पिछले कर्म ही इस जीवन में फलीभूत हो रहे हैं। हमारे जीवन के हालात और जो भी घटनाएँ जीवन में घटती हैं, वे हमारे पिछले अनेक जन्मों में लिए गए फ़ैसलों का नतीजा हैं। जैसा कि बाइबल के न्यू टेस्टामेंट में कहा गया है, "तुम्हारे सिर के बाल भी गिने हुए हैं।" (ल्यूक 12:7-8) भले ही हमारे जीवन में बहुत कुछ पहले से ही निर्धारित है, फिर भी हम थोड़ी-बहुत मनमर्ज़ी कर सकते हैं। इसके फलस्वरूप, बकाया कर्ज़ चुकाते समय, हम नए कर्म भी बना सकते हैं, जिन्हें 'क्रियमान' कर्म कहते हैं।

क्योंकि हम अपने वर्तमान जीवन में इन क्रियमान कर्मों का परिणाम नहीं भुगत सकते, इसलिए ये क्रियमान कर्म हमारे 'संचित' कर्मों के बहुत बड़े भंडार में जमा हो जाते हैं जो पिछले जन्मों के बकाया कर्मों का भंडार है। इसलिए हमारी आत्मा एक दुष्चक्र में फँस जाती है।

यहाँ एक विरोधाभास सामने आता है: अगर कर्मों का क़ानून अटल है तो इनसान अभी तक इस बात से बेख़बर क्यों है कि यह कैसे काम करता है? संत-महात्मा समझाते हैं कि पिछले जन्मों को याद न रख पाने के कारण स्वतंत्र इच्छा का भ्रम बना रहता है। हम ख़ुद को स्वतंत्र पात्र समझते हैं क्योंकि हम इस बात से अनजान हैं कि हमारे वर्तमान फ़ैसलों का आधार हमारे पिछले जन्मों के संचित कर्म हैं। ग्रीक शब्द 'क्रिमा' जिसका अर्थ है न्याय या रब्बी हुक्म का उल्लंघन करने वाले काम, इस सच्चाई को दर्शाता है: हम काँटे बो कर गुलाब की उम्मीद नहीं कर सकते। फिर भी, हमारी गलती यह है कि हम कर्म को वर्तमान जन्म तक ही सीमित समझते हैं। संत-महात्मा समझाते हैं कि हर कर्म का परिणाम होता है लेकिन इनसान की ज़िंदगी इतनी छोटी है कि सभी कर्मों का हिसाब-किताब एक ही जीवन में चुकता नहीं किया जा सकता।

संत-महात्मा समझाते हैं कि ज़िंदगी एक अदृश्य जेलख़ाना है। हम ब्रह्मांड रूपी मंच पर अपने संचित कर्मों के आधार पर लिखी हुई कहानी के अनुसार भूमिका निभाते हैं। मौत से नाटक का एक भाग समाप्त होता है, पूरा नाटक नहीं और हमें अगले भाग में एक नई भूमिका दे दी जाती है। सोलहवीं सदी की भक्त मीराबाई निम्नलिखित पंक्तियों में, अपने संचित कर्मों के बोझ पर दु:ख प्रकट करती हुई परमात्मा से विनती करती हैं कि वह उसे आवागमन के चक्कर से मुक्त कर दे:

कष्ट आपे मने कर्म ना बंधन, दूर तुं कर किर्तार॥
आ संसार वह्यो वह्यो जाय छे, लख चोराशी धार॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, आवागमन निवार॥

विनती और प्रार्थना के शब्द

इन पंक्तियों में दिए 'चोराशी' शब्द से भाव चौरासी लाख योनियों का चक्र है जिसमें जीव बार-बार जन्म लेते हैं। क्या जन्म और मृत्यु के इस चक्र से मुक्ति संभव है? संत-महात्मा दावे से कहते हैं कि यह संभव है लेकिन सिर्फ़ तभी, जब हम चार उसूलों का नियमपूर्वक पालन करें। पहले तीन उसूलों – शाकाहारी भोजन खाना जिसमें दूध भी शामिल है, मादक पदार्थों से परहेज़ करना और नैतिक जीवन जीना – का पालन करने से हम आगे के लिए कम कर्म इकट्ठे करते हैं। हालाँकि, सिर्फ़ इन उसूलों का पालन करने से न तो हमारे संचित कर्मों का विशाल भंडार समाप्त हो सकता है और न ही हमारी आत्मा जन्म और मृत्यु के कभी न समाप्त होनेवाले चक्र से आज़ाद हो सकती है। पुण्य कर्म भी हमें कर्मों के जाल से मुक्त नहीं कर सकते। सच्ची मुक्ति चौथे उसूल का पालन करने पर निर्भर है: पूरी निष्ठा के साथ पूर्ण देहधारी सतगुरु द्वारा सिखाए गए रूहानी अभ्यास को रोज़ाना करना।

भजन-सिमरन के दौरान, आत्मा 'शब्द' से जुड़ जाती है और यही वह शक्ति है जो कर्मों के बंधनों से मुक्त करती है। यद्यपि नैतिक आचरण ही हर रूहानी साधना की नींव होता है लेकिन सिर्फ़ 'शब्द' ही कर्मों के बोझ को समाप्त कर सकता है और कर्मों, प्रतिक्रियाओं और उनके परिणाम के चक्र को ख़त्म कर सकता है। गुरु नानक देव जी ने अपनी बानी में इस बात को स्पष्ट किया है और साथ ही फ़रमाया है कि सिर्फ़ नाम ही कर्मों की मैल को धो सकता है, साथ ही मन पर पड़े गहरे संस्कारों और इच्छाओं रूपी बीजों का नाश कर सकता है:

भरीऐ हथ पैर तन देह॥ पाणी धोतै उतरस खेह॥
मूत पलीती कपड़ होए॥ दे साबूण लईऐ ओह धोए॥
भरीऐ मत पापा कै संग॥ ओह धोपै नावै कै रंग॥

नाम सिद्धान्त

भले ही आत्मा की मुक्ति के लिए भजन-सिमरन ज़रूरी है लेकिन मीराबाई का पद एक बहुत गहरे रूहानी सत्य को प्रकट करता है: इनसान चाहे कितनी भी लगन से कोशिश क्यों न करे, परमात्मा की दया-मेहर के बिना कर्मों के जाल से छुटकारा पाना संभव नहीं है। जहाँ रूहानी अभ्यास मन को निर्मल करता है और कर्म के बंधनों को क्षीण करता है, वहीं मीराबाई की यह विनती "दूर तुं कर किर्तार," परमात्मा की दया-मेहर के बिना इंसानी कोशिशों की निरर्थकता को दर्शाती है। अत: आत्मा के सफ़र के दो पहलू हैं। हालाँकि आत्मा ही अपने बंधन (कर्म के ज़रिए) का कारण है और यही अपनी मुक्ति (भजन-सिमरन के ज़रिए) की चाहत भी रखती है लेकिन यह मुक्ति भक्ति-भाव और दया-मेहर दोनों पर निर्भर है।

रूहानी अभ्यास द्वारा आत्मा की मुक्ति प्राप्त करने की चाहत बढ़ती जाती है और परमात्मा की दया-मेहर इसे पूरा करती है। आत्मा को कर्मों के बंधन से सदा के लिए मुक्ति सिर्फ़ चाहने या नेक आचरण से नहीं बल्कि रूहानी अभ्यास द्वारा परमात्मा की पहचान करने पर प्राप्त होती है। मीराबाई की प्रार्थना इन दोनों के संयोग को दर्शाती है: भक्ति उसके अंदर और अधिक तड़प पैदा करती है फिर भी उसकी मुक्ति परमपिता परमात्मा के हाथों में है। कोशिश और दया-मेहर के संयोग से चौरासी का पहिया घूमना बंद हो जाता है और आत्मा अंत में कर्मों की ज़ंजीरों से आज़ाद होकर रूहानी चढ़ाई करती हुई शाश्वत मुक्ति प्राप्त कर लेती है।

चिंता करना छोड़ दें

"चिंता मत करो।" दिलासा देने वाले ये सरल शब्द हमारी ज़िंदगी में बार-बार दोहराए जाते हैं, जिनकी शुरुआत हमारी शुरुआती चिंताओं से होती है। बचपन में हम मुसीबत में पड़ने, दूसरों द्वारा सताए जाने या दोस्त बनाने की चिंता करते हैं। किशोरावस्था में हमारी चिंता की वजह साथियों जैसा बनना, परीक्षा में असफल हो जाने का डर और अपनी शक्ल-सूरत होता है। बालिग होने पर ये चिंताएँ हमारे व्यवसाय, आर्थिक सुरक्षा, घर ख़रीदने, बच्चों की परवरिश, अपने माता-पिता की देखभाल और अपनी सेहत की चिंताओं में बदल जाती हैं; चिंताओं की यह सूची कभी ख़त्म नहीं होती। कभी-कभी ऐसा लगता है जैसे कि हम अपनी पूरी ज़िंदगी किसी न किसी चीज़ की चिंता में ही बिता देते हैं।

जब संत-महात्मा यह समझाते हैं कि "चिंता मत करो" तब जिन चुनौतियों का हमें सामना करना पड़ता है उन्हें देखते हुए हम इस नसीहत के व्यावहारिक होने पर सवाल उठाए बिना नहीं रह सकते। क्या अपनी चिंताओं को छोड़ देना सच में मुमकिन है? इस सवाल का जवाब यह है कि हमें अपनी चिंताओं को नज़रअंदाज़ नहीं करना है बल्कि उन चिंताओं के कारण को जानना है और इस बात को समझना है कि उनका हम पर कितना बुरा असर पड़ता है। महाराज चरन सिंह जी पुस्तक संत संवाद, भाग2 में हमारी इच्छाओं को हमारी चिंता का मूल कारण मानते हैं। आप हमें अपने प्रारब्ध को स्वीकार करने और परमात्मा की रज़ा में रहने के लिए प्रेरित करते हैं:

> *हम चिंता इसलिए करते हैं, क्योंकि हम चाहते हैं कि कुछ बातें वैसे ही हों जैसे हम चाहते हैं। हमारे अंदर कुछ ख़ास इच्छाएँ, कुछ ख़ास चाहतें, कुछ ख़ास उद्देश्य हैं जिन्हें हम पूरा करना चाहते हैं। हमें हर वक़्त यही चिंता रहती है कि हम उन चीज़ों को हासिल कर पायेंगे या नहीं, हम उन चाहतों को पूरा कर पायेंगे या नहीं। हमें यही चिंता सताती रहती है।*

अगर हम इसे परमात्मा पर छोड़ दें, अगर हम उसकी रज़ा में रहें, तो वही बेहतर जानता है कि हमें क्या देना है। हमें तो बस अपने आप को उसकी हर बख़्शिश के लिये तैयार करना है। फिर ऐसा क्या है जिसके बारे में चिंता की जाये?

महाराज जी द्वारा रज़ा में राज़ी रहने की नसीहत तब और भी प्रभावशाली हो जाती है जब हम अंग्रेजी भाषा के शब्द 'वरी' (worry) का इतिहास देखते हैं जोकि वाइर्गन (wyrgan) से बना है जिसका मतलब है गला घोंटकर मार डालना। इस शब्द का इतिहास चिंता के असर को स्पष्ट रूप से दर्शाता है। चिंता सिर्फ़ हमें परेशान नहीं करती; यह हमें जकड़ लेती है। यह विवेक का नाश कर देती है, ख़ुशी का गला घोंट देती है और समझ को धुंधला कर देती है। इसलिए जब संत-महात्मा समझाते हैं, "चिंता मत करो," तब वे हमारी परेशानियों को नज़रअंदाज़ नहीं कर रहे होते बल्कि चिंताओं के फँदे को काटने के लिए हमें एक अहम युक्ति समझा रहे होते हैं: भजन-सिमरन।

जैसा कि महाराज चरन सिंह जी आगे समझाते हैं, भजन-सिमरन का असली मक़सद है, "ख़ुद को ऐसा नज़रिया अपनाने के लिए तैयार करना... ऐसा नज़रिया बना लें कि जो कुछ भी हमारी ज़िंदगी में हो रहा है, उसे हम उसकी रज़ा मान लें।" जब हम चिंता करते हैं तब हमारा ध्यान पूरी तरह से 'मुझ' पर और 'मैं' पर केंद्रित होता है: क्या जो मैं सोचता हूँ वैसा होगा; इन चीज़ों का मुझ पर कैसा प्रभाव पड़ेगा; मैं कैसा महसूस करता हूँ। यह आत्म-केंद्रित मानसिकता हमें हमारी शक्ल-सूरत, व्यक्तिगत विशेषताओं, रिश्ते-नातों और प्राथमिकताओं के जाल में फँसा देती है। हालाँकि, भजन-सिमरन हमें 'मैं' और 'मेरी परेशानियाँ' की तुलना में बहुत बड़ी सत्ता के आगे समर्पण करना सिखाता है और इनसान होने के नाते हम जिस सीमित पहचान से जुड़े हैं उससे मुक्त कर देता है।

भजन-सिमरन कई और तरीकों से भी चिंता के असर को कम करता है और हमारे नज़रिए को सही कर देता है। जब हम चिंता करते हैं तब समस्याएँ अकसर इतनी बड़ी लगने लगती हैं जितनी वे असल में होती नहीं हैं और हमें उन्हें सुलझाने की अपनी क़ाबिलीयत पर ही संदेह होने लगता है। हमारा दिमाग उन काल्पनिक मुसीबतों में ही उलझा रहता है जो शायद कभी आएँ ही न। जब कभी मुश्किलें आती हैं तब भी असल में वे उतनी बड़ी नहीं होती हैं जितनी हमने अपने मन में बनाई होती हैं। भजन-सिमरन इस आदत पर रोक लगाकर हमारी चेतना को सोच-विचार के दायरे से ऊपर ले जाता है। बार-बार सिमरन करने से जब हमारे मन में आने वाले बेशुमार विचार बंद हो जाते हैं तब भजन का अभ्यास हमें 'शब्द' से एकसुर कर देता है, उस मूल स्पंदन से जो रचना के कण-कण में विद्यमान है। जब हमें शब्द-धुन सुनाई देने लगती है तब हम उन चीज़ों से और ज़्यादा उपराम हो जाते हैं जो पहले हमें परेशान किया करती थीं। अंततः भजन-सिमरन ज़िंदगी के प्रति हमारे नज़रिए को पूरी तरह बदल देता है। हमें एहसास होता है कि सभी आपदाएँ, चाहे वे कितनी भी चुनौतीपूर्ण क्यों न हों, आरज़ी होती हैं और अंतर में सतगुरु के मार्गदर्शन से हम उनसे उबर जाएँगे।

महाराज चरन सिंह जी जीवत मरिए भवजल तरिए पुस्तक के नीचे दिए गए उद्धरण में हमें याद दिलाते हैं कि सतगुरु हमारी ज़िंदगी के 'कर्णधार' हैं, मतलब जब हम उनके बन जाते हैं, वह हमेशा हमारी मदद के लिए तैयार रहते हैं। अगर फिर भी हम चिंता करते हैं तो यह हमारे अंदर सतगुरु के प्रति विश्वास की कमी को दर्शाता है और हम उनके द्वारा दिए गए सहारे को अस्वीकार कर रहे होते हैं। अगर हम चिंता करने या दूसरों पर भरोसा करने का फ़ैसला करते हैं तो वह हमें रोकेंगे नहीं, लेकिन जब हम उनके बन जाते हैं और पूरी तरह से समर्पण कर देते हैं तब वह हमें सब कुछ दे देते हैं। तब हमारी ख़ुशी की कोई सीमा नहीं रहती और हमें किसी बात की चिंता नहीं होती। जैसा कि आप फ़रमाते हैं, शिष्य के हृदय में चिंता के लिए कोई जगह नहीं होनी चाहिए:

हम अपने भाग्य में लिखी घटनाओं के चक्र को तो नहीं बदल सकते, लेकिन सतगुरु के हुक्म में रहकर और भजन-सुमिरन करके उन कर्मों का हिसाब देते हुए शांत और प्रसन्न रह सकेंगे। जीवन में जो कुछ भी आये उसे हम सतगुरु की दया-मेहर, सतगुरु की मौज और बख़्शिश समझकर स्वीकार कर सकेंगे। हमें विश्वास हो जाएगा कि सतगुरु ही हमारे जीवन के कर्णधार हैं और उनके हृदय में हमारे सुख और भलाई का ही ख़्याल है। अपनी दया से वे जितनी जल्दी हो सके हमें प्रभु के पास ला रहे हैं, ताकि जो कुछ भी प्रभु के पास है वह सब हमें दे सके। इसलिए शिष्य के हृदय में चिंता के लिए कोई स्थान नहीं होना चाहिए।

जीवत मरिए भवजल तरिए

एक नई जागरूकता

हे प्रीतम! तेरे अलौकिक सौंदर्य
की कहानियाँ तो बहुत सुनी हैं,
पर अब जब अपने अंदर तेरा दीदार हुआ, तो पाया कि तू वास्तव में
इन वर्णनों से हज़ार गुणा बढ़कर है।

ख़्वाजा हाफ़िज़

सतगुरु नामदान के समय साफ़-साफ़ समझा देते हैं कि सतगुरु का नूरी-स्वरूप सदा हमारे साथ है। यह मात्र एक कल्पना नहीं है बल्कि हम अभ्यास द्वारा स्वयं अपने अंतर में इस सच्चाई का प्रत्यक्ष अनुभव कर सकते हैं। हमारी अंतर्दृष्टि पर, आशंकाओं, मोह-ममता, विषय-वासनाओं, इच्छाओं-तृष्णाओं और भ्रमों की अनगिनत परतें चढ़ी हुई हैं, जिनके कारण इस सत्य का पता नहीं चलता। ...सुमिरन द्वारा सुरत तीसरे तिल पर एकाग्र होती है और ध्यान द्वारा उसे वहाँ टिकाए रखने में सहायता मिलती है। नदी के बहाव के विरुद्ध तैरते समय हमें किसी चट्टान के सहारे की ज़रूरत पड़ती है ताकि उसे पकड़कर हम साँस ले सकें और अपनी मंज़िल तक पहुँचने के लिए फिर से बहाव के विपरीत तैरना जारी रख सकें। इसी प्रकार सुमिरन भी मन को पतन की ओर ले जानेवाली प्रवृत्तियों के विरुद्ध तैरने में हमारी सहायता करता है और ध्यान वह चट्टान है जिसका सहारा लेकर हम ऊपर की ओर तरक्की जारी रखते हैं।

आँखें बंद करने पर चाहे हमें अंदर अँधेरा ही दिखाई दे...इस अँधेरे में ही हमारे आंतरिक अभ्यास की शुरुआत होती है। जब ध्यान अँधेरे में पूरी तरह टिक जाए तो समझो हम घर की दहलीज़ पर पहुँच गए हैं। यही अमर जीवन की ओर खुलनेवाला दरवाज़ा है। फिर ज्यों-ज्यों सुमिरन करते हुए ध्यान अँधेरे में स्थिर होता जाता है, एकाग्रता धीरे-धीरे इतनी गहन हो जाती है कि आख़िर में हम आंतरिक साधना में इस हद तक लीन हो जाते हैं कि

हमें शरीर की कोई सुध-बुध नहीं रहती। उस समय हमें अपनी चेतना के एक नए स्तर का आभास हो जाता है।

आँखें बंद करते ही जो अंधकारमय आकाश अंदर दिखायी देता है, वह सिनेमा के परदे के समान है। ध्यान के पूरी तरह एकाग्र और स्थिर होने पर इसी आंतरिक आकाश में तारा-मंडल, सूर्य-मंडल और चंद्र-मंडल प्रकट होते हैं और सतगुरु का नूरी-स्वरूप भी इसके अंदर ही प्रकट होता है। इसलिए यह अंधकार बहुत ज़रूरी है। हमें इससे डरना नहीं चाहिए बल्कि इसका स्वागत करते हुए इसमें प्रेमपूर्वक ध्यान टिकाना चाहिए। जब सुमिरन द्वारा एकाग्रता गहन हो जाती है तो निरत अपने आप ही जाग्रत हो जाती है और अंतर में अंधकार की जगह प्रकाश फैल जाएगा।

हउ जीवा नाम धिआए

विचार करने योग्य

चलो बातचीत करें

दुनियावी प्यार से रूहानी प्यार का सफ़र

इंसानी प्यार, जैसा कि हम आमतौर पर महसूस करते हैं, गहरे लगाव, ज़रूरतों और उम्मीदों से जुड़ा होता है। उदाहरण के लिए, माँ का अपने बच्चों के लिए प्यार, इस उम्मीद से जुड़ा है कि वह भविष्य में उसकी सँभाल करेंगे। प्रेमी और प्रेमिका का प्यार आपसी प्रेम से पनपता है जबकि शौक़ व धन-संपत्ति के लिए हमारा प्यार उनसे मिलने वाली ख़ुशी पर निर्भर करता है। हालाँकि ये सब प्यार शर्तों पर आधारित हैं, ये अनुभव एक ऐसा रिश्ता जोड़ने की हमारी क़ुदरती चाह को दर्शाते हैं जो शर्तों से परे हो।

जब हम किसी से प्यार करते हैं तब हमें उसमें कुछ असाधारण – कोई ऐसा गुण दिखाई देता है कि हम ग़लती से यह मानना शुरू कर देते हैं कि यह ख़ूबी सिर्फ़ उसी व्यक्ति में है। हम सोचते हैं, "वह किसी दूसरे के जैसा नहीं है।" यह सोच इसलिए पैदा होती है क्योंकि हमारे प्यार का आधार अकसर उसके बाहरी गुण, जैसे कि उसकी शक़्ल-सूरत या व्यक्तित्व होता है। हालाँकि, इस तरह का नज़रिया एक बुनियादी सच को नज़रअंदाज़ कर देता है: जिसे हम प्यार करते हैं, उसकी हस्ती का सार (आत्मा) सिर्फ़ उस तक ही सीमित नहीं है बल्कि वह हर किसी में मौजूद है।

हालाँकि दुनियावी प्यार हक़ीक़त की धुंधली-सी झलक देता है, फिर भी यह प्यार हमें दुनियावी स्तर से आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करता है। यह करनी के लिए आह्वान है जो हमें अपने हृदय और अपने मन को निर्मल करने की प्रेरणा देता है ताकि हम उस ऊँची क़िस्म के प्यार – परमात्मा के लिए प्रेम – के लिए तैयार हो सकें। दुनियावी प्यार के उलट, जिसका आधार हमारी ज़रूरतें और उम्मीदें हैं, दिव्य प्रेम निस्स्वार्थ और बिना किसी शर्त के होता है। अहंकार और इच्छा से मुक्त, दिव्य प्रेम शाश्वत आनंद और शांति प्रदान करता है। इस अवस्था में, प्रेमी और प्रियतम एक हो जाते हैं फलस्वरूप जुदाई का भ्रम ख़त्म हो जाता है। जैसा कि मौलाना रूम लिखते हैं, "आशिक़ आख़िरकार कहीं मिलते नहीं हैं। वे हमेशा एक-दूसरे में ही समाए होते हैं।" ('द एसेंशियल रूमी'

से उद्धरित) यह मिलाप आत्मा की घर वापसी को दर्शाता है – पूर्णता की ओर वापसी, जिसे हम भूलवश दुनियावी प्यार से पाने की उम्मीद रखते हैं। अपने अंदर दिव्य प्रेम के सामर्थ्य को पहचानकर और उसे पाने का प्रयास करके, हम प्रेम के बारे में अपनी समझ और नज़रिए को बदल सकते हैं।

पूर्ण सतगुरु की भूमिका

रूहानी प्रेम कहानी का मरकज़ देहधारी सतगुरु होता है जो हमें प्यार करना सिखाता है। सभी पूर्ण संत-सतगुरुओं का मूल संदेश यह है कि प्रेम परिवार और दोस्तों के छोटे से दायरे तक सीमित न होकर सर्वव्यापी होना चाहिए। इसका अभिप्राय है कि जिससे भी मिलें, प्रेम से मिलें, उनसे भी जिन्हें हम पसंद नहीं करते हैं। हमारा मन इस बात को लेकर सवाल कर सकता है कि क्या यह मुमकिन है, लेकिन सतगुरु इस बात का जीता-जागता उदाहरण हैं कि सभी से प्रेम किया जा सकता है। भले ही बाहरी तौर पर सतगुरु हमें आम इनसान लगें, एक ऐसे इनसान जिसका नाम है, पहचान है और परिवार है मगर उनका असल स्वरूप बाहरी वुजूद से बिलकुल अलग होता है। वह दिव्य धुन के बारे में समझाते हैं जिसे वे कभी-कभी 'शब्द' या 'परमात्मा की आवाज़' भी कहते हैं; यह वही स्रोत है जिससे सारी सृष्टि पैदा होती है और जिसमें वापस समा जाती है।

पूर्ण देहधारी सतगुरु बिना किसी परख के जिज्ञासुओं को अपनी शरण में ले लेते हैं और उनकी कमियों-कमज़ोरियों को नज़रअंदाज़ कर देते हैं; सतगुरु का उद्देश्य उनका मार्गदर्शन करना होता है ताकि वे स्वयं दिव्य प्रेम का अनुभव कर सकें। सतगुरु और शिष्य के बीच का नाता दुनियावी तर्क से परे होता है। जहाँ इंसानी प्यार में अकसर एक-दूसरे से कुछ पाने की उम्मीद होती है, वहीं सतगुरु का प्यार असीम और बिना किसी शर्त के होता है। उनकी दया-मेहर समय और स्थान से परे होती है, आंतरिक और बाहरी मार्गदर्शन के ज़रिए जिज्ञासु की सँभाल करती है। एक माँ की तरह जो अपने बच्चे को चलना सिखाती है, उसके लड़खड़ाने के बावजूद धैर्यपूर्वक उसका साहस बढ़ाती है,

वैसे ही सतगुरु सदा करुणा के साथ परमार्थ के जिज्ञासुओं का मार्गदर्शन करते हैं, वह उनके अवगुणों या असफलताओं की ओर कभी ध्यान नहीं देते।

गुरु-शिष्य के रिश्ते की धुरी है दर्शन। शुरू-शुरू में, हम सतगुरु के देह स्वरूप को देखकर संतुष्ट हो सकते हैं। मगर जैसे-जैसे रिश्ता गहरा होता जाता है, हम सतगुरु के अहम संदेश को और अधिक ध्यान से सुनते हैं: हमारा असल वुजूद शरीर नहीं बल्कि आत्मा है जो अपने स्रोत, शब्द में समाना चाहती है। सतगुरु के देह स्वरूप से प्यार करना मंज़िल तक पहुँचने का ज़रिया है; यह दिव्य शब्द-धुन – अंतर में सच्चे गुरु – के प्रेम की ओर क़दम बढ़ाने का साधन है।

रूहानी प्रेम की क़ीमत

सतगुरु के देहस्वरूप के प्रेम से आगे बढ़कर उनके नूरी स्वरूप से प्रेम करने के लिए करनी ज़रूरी है: शांति से चुपचाप बैठना, सिमरन के ज़रिए ख़याल को दुनिया की ओर से हटाकर तीसरे तिल पर एकाग्र करना। जैसे एक किसान खेतों में हल चलाता है वैसे ही रोज़ाना सिमरन करने से मन सतगुरु की दया-मेहर प्राप्त करने के लायक़ बन जाता है। धीरे-धीरे, भजन-सिमरन प्रेम के इज़हार का ज़रिया बन जाता है जो एकाग्रता के बढ़ने के साथ बढ़ता जाता है। भजन-सिमरन के दौरान अंतर में ध्यान जितना ज़्यादा एकाग्र होता है, परमात्मा के साथ नाते का एहसास उतना ही गहरा होता है। उस दिव्य सत्ता से संबंध का एहसास जितना गहरा होता है, हमारा प्यार उतना ही बढ़ता है जो 'शब्द' की अपार दया-मेहर को दर्शाता है।

रूहानी प्रेम पैदा करने की क़ीमत देनी पड़ती है। संत कबीर द्वारा दिया प्रेम के बाज़ार का दृष्टांत इस कटु सत्य को पेश करता है, जहाँ प्रेम की क़ीमत शीश देकर चुकानी पड़ती है:

प्रेम न बाड़ी ऊपजै, प्रेम न हाट बिकाय।
राजा परजा जेहि रुचै, सीस देइ लै जाय॥
संत कबीर

अपने शीश (सीस) को अर्पित करना भजन-सिमरन के ज़रिए अपने अहंकार को ख़त्म करने का प्रतीक है। अहंकार को ख़त्म करने के लिए अभिमान और अपनी अलग पहचान को छोड़ना पड़ता है और शायद सबसे मुश्किल होता है परमात्मा की रज़ा में राज़ी रहना। पूर्ण समर्पण न तो ख़ुद-ब-ख़ुद होता है, न ही बिना कोशिश किए संभव है; इसके लिए इच्छाओं, अपनी परख और इस भ्रम को छोड़ना पड़ता है कि हमारे वश में कुछ है। इसके लिए अहं के सूक्ष्म से भी सूक्ष्म जाल में से निकलना पड़ता है जैसे कि रूहानी अनुभवों की इच्छा रखना या अपनी रूहानी तरक़्क़ी पर गर्व करना। संत-महात्मा चेतावनी देते हैं कि भजन-सिमरन को मशीनी ढंग से करने के बजाय हृदय में सच्ची तड़प लेकर किया जाना चाहिए। जैसा कि बाबा जैमल सिंह जी फ़रमाते हैं: "सौ-सौ वर्ष भजन करने से भी मन ऐसा शुद्ध नहीं होता जैसा कि सच्ची तड़प में बहे एक आँसू से होता है।"

रूहानी प्रेम की पूर्णता परम आनंद नहीं बल्कि स्थिरता है, एक ऐसा मिलाप जहाँ प्रेमी और प्रियतम पूर्ण रूप से एक-दूसरे में समा जाते हैं। उस अवस्था में 'मैं' और 'तुम' के द्वैत का भ्रम ख़त्म हो जाता है। 15वीं सदी के संत कबीर साहिब ने इस अवस्था का वर्णन इस तरह किया है:

कबीर तूं तूं करता तू हुआ मुझ मह रहा न हूं॥
जब आपा पर का मिट गइआ जत देखउ तत तू॥

संत कबीर

कबीर साहिब के ये वचन ऐसे पूर्ण प्रेम को प्रकट करते हैं जिसमें साधक की कोई हस्ती नहीं रहती, सिर्फ़ साध्य ही रह जाता है। ऐसा मिलाप जज़्बातों से ऊपर है; साधक प्रेमी न रहकर, प्रेम-रूप ही हो जाता है। ऐसा कायाकल्प छिपा नहीं रहता है। जो रिश्ते-नाते उम्मीदों की वजह से पहले बिगड़ गए थे, वे रहमदिली की वजह से फिर से जुड़ जाते हैं। फिर भी यह सफ़र चुनौतियों से ख़ाली नहीं होता। जब परख करने की पुरानी आदतें फिर से उभरती हैं और अपनी अलग पहचान का अहंकार हो जाता है तब सतगुरु का मार्गदर्शन

बहुत अहम सिद्ध होता है। उनका उपदेश हमें याद दिलाता है कि असफलताएँ नाकामी नहीं होतीं बल्कि इनसे और दृढ़ता से समर्पण करने की प्रेरणा मिलती है। आख़िरकार हम विनम्रता से हर चीज़ को स्वीकार करना शुरू कर देते हैं।

सारांश

रूहानी प्रेम कोई आदर्श नहीं है बल्कि ख़ुद की पहचान का एक सफ़र है; हम इस दुनिया में सुरक्षित महसूस करने के लिए जिन चीज़ों से चिपके हुए हैं यह उनके भ्रम को ख़त्म करता है। भजन-सिमरन के ज़रिए प्राप्त जागरूकता हमें दुनियावी रिश्तों के मोह से मुक्त करती है। समर्पण द्वारा हम नश्वर सुखों के बजाय स्थायी शांति प्राप्त कर लेते हैं। जो बचता है वह ख़ालीपन नहीं बल्कि भ्रम से मुक्त हो गई आत्मा है जो अनंत-असीम सागर की बूँद के रूप में अपनी पहचान कर लेती है। इस कायाकल्प में हम यह जान लेते हैं कि प्रेम का असल मक़सद अपने स्रोत में वापस समाने के लिए हमारा मार्गदर्शन करना है।

सतगुरु का स्वरूप, सतगुरु की दृष्टि, शब्द-धुन – ये सब हमें आकर्षित करते हैं ताकि हम परमात्मा में समाकर अविनाशी सुख प्राप्त कर सकें। जब हम परछाइयों के पीछे भागना बंद कर देते हैं तब हमें समझ आता है कि दुनियावी प्रेम हमेशा किस ओर संकेत करता था: हम कभी खोए नहीं थे, बस कुछ पल के लिए भूल गए थे। हम कभी अलग थे ही नहीं बल्कि हमेशा एक थे।

> *आत्मा प्रेम का रूप है। हमारा मक़सद प्रेम है। और उस मक़सद तक पहुँचने का रास्ता भी प्रेम है। हालाँकि कभी-कभी यह यक़ीन नहीं होता कि वक़्त के सतगुरु ने हमारा हाथ थामा हुआ है और वह हमें सिखा रहे हैं कि प्यार कैसे करना है।*
>
> *सेवा*

स्थिरता की मिठास

हमारे दिन अकसर एक घिसी-पिटी कहानी की तरह बीतते हैं। हम ख़ुद को वही नीरस दिनचर्या दोहराते हुए और मशीन की तरह अपने दायित्वों को पूरा करते हुए पाते हैं। हमारी ज़िम्मेदारियाँ और ध्यान भटकाने वाली चीज़ें चारों ओर से हमें घेरे रहती हैं, हमारे कार्यों की सूची व सोशल मीडिया सर्फ़िंग का अंतहीन चक्र चलता रहता है और हम सफलता व सांसारिक समृद्धि के लिए अथक प्रयास करते रहते हैं। हम भूलवश यह मान लेते हैं कि ये सब काम हमें ख़ुशी और संतुष्टि देंगे जबकि इसके विपरीत, ये सिर्फ़ हमारे ख़ालीपन को बढ़ाते हैं।

लेकिन इस अथक प्रयास के पीछे एक गूढ़ सच छिपा है: पूर्ण संतुष्टि बाहरी दुनिया में नहीं बल्कि हमारे भीतर ही है जिसे खोजना चाहिए। कल्पना कीजिए कि जीवन चाय का एक प्याला है जिसमें चीनी तो डाल दी गई है लेकिन उसे मिलाया नहीं गया है, इसलिए उसकी मिठास नीचे ही रह जाती है। हम जल्दबाज़ी और समय सीमा के दबाव में चाय को गटक जाते हैं और प्याले में नीचे पड़ी मिठास का स्वाद लेने के लिए कुछ पल भी नहीं निकालते। चाय की कड़वाहट के कारण हम सोचते हैं कि दुनिया खोखली क्यों लगती है और उपचार पास होने के बावजूद हम उससे बेख़बर रहते हैं।

जैसे चम्मच चाय में मिठास घोलता है, वैसे ही भजन-सिमरन वह ज़रिया है जिससे धीरे-धीरे भीतर छिपी मिठास का अनुभव होने लगता है जिससे स्पष्टता, शांति और जीने का मक़सद मिल जाता है। भजन-सिमरन के बिना, हम जीवन को मशीनी ढंग से जीते रहते हैं और अपने असल स्वरूप को जानने से मिलनेवाली मिठास और अपार आनंद से बेख़बर रह जाते हैं। लेकिन अकसर समाज की चकाचौंध भरी चीज़ों के लालच में आकर, हम ट्रेंड (trends) के पीछे भागते हैं, जानकारियों और झूठी प्रशंसा को असलियत समझने की भूल कर बैठते हैं। असल में ये मन को भटकानेवाले चोर हैं

जो हमारे मुख्य कर्त्तव्य – आत्म-साक्षात्कार – की ओर हमारा ध्यान नहीं जाने देते। इनका छल हमें यह विश्वास दिलाता है कि हमें और अधिक चाहिए, हमें और क़ामयाब होना है, और अधिक हासिल करना है। भजन-सिमरन में सहायक सिद्ध होनेवाले कार्यों द्वारा ही हम जीवन में संतुलन बना सकते हैं; तभी हम इस मिठास का आनंद ले सकते हैं।

लेकिन हम अपने जीवन में दृढ़तापूर्वक यह बदलाव कैसे ला सकते हैं और जीवन की मिठास का अनुभव कैसे कर सकते हैं? उत्तर सरल है: अनुशासन। अनुशासन कोई बोझ नहीं है; यह ख़ुद से प्रेम करने का सबसे बढ़िया तरीक़ा है। जब संसार आपके ध्यान को अपनी ओर खींचने की पूरी कोशिश करता है उस समय भजन-सिमरन में स्थिर होकर बैठने का फ़ैसला लेना अनुशासन है। इसका अर्थ है ध्यान भटकानेवाली नश्वर चीज़ों के बजाय भजन-सिमरन को प्राथमिकता देना और तुच्छ चीज़ों को 'न' कहने का साहस रखना ताकि हम अलौकिक सत्य को 'हाँ' कह सकें। भजन-सिमरन में अनुशासन का अर्थ सब कुछ त्याग देना नहीं है; इसका अर्थ है प्रेम की ख़ातिर ख़ुद को समर्पित कर देना। जब संसार हमें अपनी ओर खींचने की निरंतर कोशिश करता है तब अनुशासन द्वारा ही हम अपने सर्वोच्च उद्देश्य की प्राप्ति के लिए करनी कर पाते हैं ताकि हम अस्थायी रोमांच के बजाय स्थायी शांति प्राप्त कर सकें।

अनुशासित होने के लिए, व्यक्ति को वर्तमान पल के महत्त्व को समझना चाहिए। हालाँकि, अब वर्तमान में रहने की कला आसानी से नहीं आ जाती। हम एक साथ कई काम करने (मल्टी-टास्किंग) के इतने आदी हो गए हैं कि एक ही कार्य पर ध्यान केंद्रित करने की हमारी क्षमता कम हो गई है। दुनिया हमेशा अपनी ज़रूरतों की पूर्ति के लिए हमें अपनी ओर खींचती रहेगी, लेकिन सांसारिक कर्त्तव्यों और रूहानी दायित्व के बीच संतुलन बनाए रखना संभव ही नहीं बल्कि आवश्यक भी है। अनुशासन द्वारा ही हम अपनी करनी को अपने सर्वोच्च उद्देश्य के अनुरूप ढाल सकते हैं।

हमारे रूहानी सफ़र में न तो ज्ञान और न ही इच्छा बल्कि नियमित रूप से और सच्चे दिल से किया गया रूहानी अभ्यास ही सबसे अमूल्य दौलत है। धन-संपत्ति नाशवान है और समय बीत जाता है। केवल भक्ति ही हमें अविनाशी परमात्मा तक ले जाती है। भजन-सिमरन हमारा सहारा है; इसी के ज़रिए हम काश ऐसा होता, काश वैसा होता की कश्मकश से मुक्त होते हैं और हमें एहसास होता है कि बकबक करनेवाला मन हमारी असलियत नहीं बल्कि उससे परे की शांति है। जैसे आकाश का प्रतिबिंब शांत तालाब में दिखाई देता है वैसे ही मन पूरी तरह स्थिर होने पर आत्मा अपने सबसे गहरे सत्य का साक्षात अनुभव करती है। इस स्थिरता में, हमें ऐसी मिठास का अनुभव होता है जो अस्थायी सुखों से परे है – ऐसी मिठास जो हमारी आत्मा को पोषित करती है और परमात्मा की प्राप्ति के हमारे सर्वोच्च उद्देश्य को पूरा करती है। भजन-सिमरन द्वारा हमारा परमात्मा से गहरा नाता जुड़ जाता है और हमें जीवन को अधिक स्पष्टता और उद्देश्यपूर्ण ढंग से जीने के लिए अंतर्दृष्टि और मार्गदर्शन प्राप्त हो जाता है।

हमारे सतगुरु हमसे बस यही अपेक्षा रखते हैं कि हम अपनी तरफ़ से नियमपूर्वक भजन-सिमरन करने की पूरी कोशिश करें। हो सकता है कि हमें अभी आत्मज्ञान की प्राप्ति न हो, लेकिन हमें हर रोज़ ध्यान को एकाग्र करने की कोशिश करनी चाहिए ताकि हम भजन-सिमरन की मिठास को अनुभव कर सकें। भजन-सिमरन करने से हम अपने सतगुरु के साथ किए वायदे का मान रखते हैं और परमात्मा से जुड़े रहते हैं। हम सीखते हैं कि परमात्मा हिसाब-किताब नहीं रखता बल्कि हमारी हर छोटी-बड़ी नाकामी को मंज़ूर कर लेता है। अहंकार बड़े-बड़े कार्यों को पूरा करना चाहता है जबकि आत्मा भरोसे के साथ किए गए छोटे-छोटे प्रयत्नों से सशक्त होती है जैसे: भोर से पहले भजन-सिमरन करना, सांसारिक ज़िम्मेदारियों को पूरा करते समय ख़ामोशी से प्रार्थना करना और प्रतिक्रिया देने से पहले थोड़ा-सा सोचना।

धीरे-धीरे कुछ है, जो बदल जाता है। जो मिठास दबी हुई थी, वह उभरने लगती है। आख़िरकार हमें यह एहसास होता है कि जिस आनंद के बारे में हम सोचते थे कि हमें कभी, कहीं मिलेगा, वह हमेशा से हमारे साथ ही था, उस शोर के नीचे दबा हुआ जिसे हम जीवन समझने की भूल कर रहे थे। तो चलिए, जहाँ हैं वहीं से शुरुआत करें। चलिए, प्याले को हिलाएँ और एक घूँट पिएँ। इस सरल कार्य में, हम अपने जन्मसिद्ध अधिकार को पुन: प्राप्त करते हैं: ज़िंदगी गुज़ारने के बजाय उसका आनंद लेना, मिठास के सुख के पीछे न भागकर स्वयं उसी का रूप बन जाना।

अंतिम शब्द
रूहानी विरासत

हर संत हमें परमपिता परमात्मा से मिलाप करने की आवश्यकता को समझाने की कोशिश करता है। आत्मा, परमात्मा की अंश है और जब तक यह वापस जाकर परमात्मा में लीन नहीं होती, यह मुक्ति प्राप्त नहीं कर सकती। हज़रत ईसा, गुरु नानक, कबीर साहिब, पलटू साहिब, स्वामी जी महाराज और अन्य संत हमें परमात्मा से मिलाप करने का मार्ग समझाने के लिए संसार में आये हैं, और वह साधन है–शब्द या नाम का मार्ग।

युगों-युगों से शब्द या नाम संतों की विरासत रहा है और उनके द्वारा, परमात्मा की प्राप्ति के लिए अमली साधन के रूप में हम तक आया है। परमात्मा की प्राप्ति का साधन आज भी वही है, पहले भी वही था और आगे भी सदा वही रहेगा। यह परमात्मा की प्राप्ति का मार्ग है जिसका किसी पूर्ण गुरु के मार्गदर्शन में अंतर में प्रत्यक्ष अनुभव किया जाता है। यह प्रेम का मार्ग है, प्रकाश का मार्ग है। पर हम इस शब्द के संपर्क में, उस दिव्य-धुन और रूहानी प्रकाश के संपर्क में तभी आ सकते हैं जब हम किसी पूरे सतगुरु की शरण प्राप्त कर लें। सतगुरु की शरण प्राप्त करने का अर्थ है उनसे दीक्षा यानी नामदान प्राप्त करना, या जैसा कि हज़रत ईसा ने कहा है–एक नया जन्म लेना।

संत कहते हैं कि मालिक की सच्ची भक्ति और प्रेम की महिमा का कभी वर्णन ही नहीं किया जा सकता। मनुष्य की जिह्वा उसका गुणगान नहीं कर सकती, कोई कलम उसकी प्रशंसा लिख नहीं सकती। संसार के सभी जीव किसी न किसी से प्यार करते हैं। कोई परिवार और बाल-बच्चों से प्यार करता है, कोई क़ौमों, मुल्कों की भक्ति करता है, तो कोई धन-दौलत, ओहदों की पूजा करता है। लेकिन संत हमें समझाते हैं कि ये शक्लें और पदार्थ हमारी भक्ति और प्रेम के योग्य नहीं हैं। केवल एक ही वस्तु हमारे प्रेम और भक्ति के योग्य है और वह है परमात्मा। दुनिया का प्यार हमें वापस दुनिया में लाता है, परमात्मा का प्यार हमें परमात्मा से मिला देता है।

आत्मा के अंदर परमात्मा से मिलने की क़ुदरती कशिश है। आत्मा सतनाम समुद्र की बूँद है और इसके अंदर वापस जाकर अपने मूल में समाने की स्वाभाविक तड़प है। किसी पूरे सतगुरु की शिक्षा के अनुसार भजन-सिमरन के अभ्यास द्वारा निर्मल होकर ही आत्मा परमात्मा को पहचानने के योग्य बनती है, वापस जाकर उसमें समाने के योग्य बनती है।

पारस से पारस